संपादन:
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सह संपादक:
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकन:
उमेश गौर
धनंजय खिरवड़कर

सहयोग:
जया विवेक
अजय शर्मा
बृजेश सिंह
कविता सुरेश
अमिताभ मुखर्जी

मुखपृष्ठ: भौतिकशास्त्री फाइनमेन

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-6, जुलाई-अगस्त 1995

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 3518

वार्षिक सदस्यता (6 अंक): 35 रुपए
ड्राफ्ट, मनीऑर्डर एकलव्य के नाम से भेजें

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

ब्राज़ील में फाइनमेन 41

विख्यात भौतिक शास्त्री रिचर्ड पी. फाइनमेन वैज्ञानिक तो थे ही लेकिन सिर्फ प्रयोगशाला में घुसे रहने वाले नहीं। वो ज़िंदगी को अपनी मस्ती में जीने में विश्वास करते थे। इसी तरह कक्षा में जाकर छात्रों को पढ़ाने की उनमें ज़बर्दस्त ललक थी। लगभग 45 साल पहले कॉलेज के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए उन्हें ब्राजील बुलाया गया। अपनी जीवनी 'फाइनमेन, आप मज़ाक कर रहे हैं' में उन्होंने अपनी इस यात्रा के वृतांत को विश्लेषित किया है। जिसमें तब के ब्राज़ील में किस तरह से विज्ञान पढ़ाया जाता था, इसे खासी गहराई से टटोला है। इसी वृतांत पर आधारित लेख।
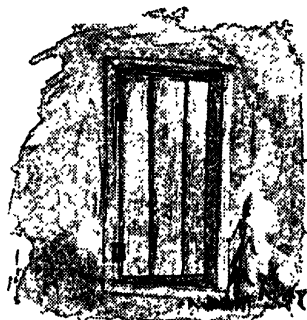
कौन तना, कौन पत्ती और कौन कांटा 21

पेड़-पौधे के किसी भी हिस्से के बारे में कितनी आसानी से ऐसी बातें कह दी जाती हैं कि फलां पौधे का कांटा पत्ती का रूपांतरण है या फिर प्याज़ को पत्तियां, अदरक को तना कह देते हैं। और-तो-और यदि किसी पेड़ पर कोई कांटा दिख जाए तो झट से कह दिया जाता है कि अरे ये तो टहनी का रूपांतरण है। आखिर इस तरह की बातों का कोई आधार भी होता है? ये कैसे तय किया जाए कि यह कांटा है, या पत्ती या फिर तना? रूपांतरण के इन्हीं पहलुओं का विस्तार से विश्लेषण।
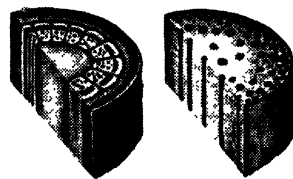
सवा छोटा, चौथाई बड़ा 73

जिस तरह कक्षा में बच्चों को बता दिया गया, उन्होंने मान लिया, लेकिन क्या वो सही था? भिन्न की अवधारणा को लेकर उदयपुर (राजस्थान) के तीन स्कूलों में किए सर्वे पर आधारित एक रिपोर्ट। यह सर्वे पांचवीं से लेकर दसवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के बीच किया गया। भिन्न की अवधारणा को लेकर पांचवीं के विद्यार्थियों और दसवीं के विद्यार्थियों की समझ में कुछ अंतर था? बच्चों ने सवालों के जो जवाब दिए वो ही अपने आप में गणित की इस अवधारणा को लेकर इतने सालों की पढ़ाई के दौरान बनी उनकी समझ को विश्लेषित कर रहे हैं।

इस अंक में

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' के मार्च-अप्रैल अंक में प्रकाशित 'क्यों करें प्रयोग' अपनी आपबीती लगा। स्कूल कॉलेज में पढ़ने के दौरान जब हम अनुमापन (टाइट्रेशन) का प्रयोग करते थे, उसका निष्कर्ष शिक्षकों के द्वारा बताई गई सांद्रता जितना कभी नहीं आता था। इसको लेकर जब सवाल करते तो जवाब में डांट मिला करती या फिर शिक्षक कहते थे कि कहीं गलती हो रही होगी, फिर करो। शायद पूरी-की-पूरी क्लास ही गलती करती होगी, क्योंकि किसी का भी निष्कर्ष शिक्षकों द्वारा बताए उत्तर से नहीं मिलता था।

प्रमोद मैथिल
पुरानी इटारसी

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' के पांचवें अंक में प्रकाशित लेख 'क्यों चढ़ा पानी और ऊपर' के आधार पर मैंने खुद एक, दो और तीन मोमबत्तियों से प्रयोग करके देखा।

कांच के जिस गिलास का मैंने प्रयोग के लिए इस्तेमाल किया उसके नीचे से बंद वाले भाग की त्रिज्या करीब 5.5 से.मी. और खुले भाग की त्रिज्या 7 से.मी. के लगभग थी। मेरे जो अवलोकन आए वे इस प्रकार हैं।

एक मोमबत्ती को जलाकर रखने पर गिलास के अंदर पानी बाहरी सतह से 1.3 से.मी. ऊपर तक चढ़ा। इसी तरह दो मोमबत्ती रखने पर 2.7 और तीन मोमबत्तियां रखने पर 3.2 से.मी. की ऊंचाई तक पानी चढ़ा। इन अवलोकनों को माचिस की तीलियों से जांचने का तरीका देने का लेखक का प्रयास सराहनीय है। माचिस की तीलियों से प्रयोग करने के बाद क्या अवलोकन मिलते हैं वह अभी देखना बाकी है।

वसंत वड़वले
वेड़छी. ज़िला - सूरत

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' बहुत अच्छा प्रयास है। इससे अभिभावकों, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में अच्छी समझ बन सकेगी। सामग्री स्तरीय तथा रोचक है। कोशिश की जाना चाहिए कि 'संदर्भ' स्कूल शिक्षकों के साथ-साथ अभिभावकों के पास भी पहुंचे। शिक्षा के तीन प्रमुख स्तंभ बालक, पालक और शिक्षक में पालकों को शिक्षित करने की ज़्यादा ज़रूरत है। हमारे परिवेश में पालक की भूमिका नगण्य-सी है। 'एकलव्य', 'संदर्भ' के मार्फत ऐसे पालकों से संपर्क बना सकता है जो बालकों की शिक्षा में गहरी दिलचस्पी रखते हैं।

सुरेश पटेल, खातेगांव

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' के प्रवेशांक सहित चारों अंक पढ़े। ऐसे वक्त में जबकि तेजी से प्रदूषित हो रहे वातावरण में साफ सुथरी व नवीन वैचारिक दृष्टिकोण की पत्रिकाओं की संख्या नगण्य है, संदर्भ का प्रकाशन सराहनीय प्रयास है। पत्रिका की रोचकता बढ़ाने हेतु विज्ञान वर्ग पहेली भी शुरू कीजिए। साथ ही समसामयिक प्रेरक घटनाक्रम से संबंधित कोई स्तंभ भी आवश्यक है।

मनोहर लश्करी, ज़िला - धार

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' को हमारे मंडल के कुछ सदस्यों ने पढ़ा। वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक विषयों पर 'संदर्भ' में छपी जानकारी उद्बोधक एवं

मनोरंजक है। लेखकों ने जितनी सरलता से विषयों को प्रस्तुत किया है, अहिन्दी-भाषी होते हुए भी 'संदर्भ' पढ़ने का आनंद हम उठा सके। पत्रिका सचित्र भी है। विशेष रूप से 'कैसे मिले गुण हमें' और 'ये ढांचे कैसे बने' शीर्षक से प्रकाशित लेखों में दिए गए चित्र और फोटोग्राफ्स बहुत सुन्दर हैं।

मिलिंद काले
खगोल मंडल
मुंबई

pH या ph

प्रिय संपादक,

संदर्भ के चौथे अंक में प्रकाशित लेख 'दो तरह की अम्लीयता-क्षारीयता' पर मेरी कुछ टिप्पणियां।

लेख में न जाने क्यों pH को ph छापा गया है। ज़्यादा संभावना यही है कि यह छपाई की गलती है। इससे बचा जाता तो बेहतर था, क्योंकि हमेशा pH देखने वालों को यह थोड़ी खटकती है। सन 1909 में डेनमार्क के एक रसायन शास्त्री पी.एस.एल. सोरन्सन ने सब से पहले इस स्केल का इस्तेमाल शुरू किया था और तब उन्होंने इसे PH द्वारा दर्शाया था। बाद में यह बदल कर pH के रूप में दर्शाया जाने लगा और अब ऐसे ही लिखा जाता है। यहां p अक्षर pussancea का संक्षिप्त है जिसका अर्थ है 'पॉवर' और H वास्तव में हाइड्रोजन आयन को दर्शाता है। इस तरह pH का अर्थ हाइड्रोजन आयन की पॉवर या एक्सपोनेंट। वैसे भी रसायन विज्ञान में हाइड्रोजन को H लिखकर दर्शाते हैं h से नहीं। इस तरह सभी जगह एक से प्रचलन से सुविधा रहती है। इसलिए pH की जगह ph लिखकर गर इरादा कहीं प्रचलन तोड़ने का है तो वैसे तो खास फर्क नहीं पड़ता, पर कहीं सभी जगह हाइड्रोजन को अलग-अलग तरह से दर्शाया जाने लगा तो समझने-समझाने में खासी दिक्कत होने लगेगी।

लेख में और भी कुछ गड़बड़ियां हैं।

अगर दुर्बल अम्ल - एसीटिक अम्ल का अपूर्ण विभाजन

$$CH_3COOH \rightleftharpoons CH_3COO^- + H^+$$

ऐसे दिखाया जाए तो प्रबल अम्ल HCl जो तनु जलीय घोल में लगभग पूरी तरह विभाजित अवस्था में होता है या तो

$$HCl \rightleftharpoons H^+ + Cl^-$$

ऐसे दर्शाया जाना चाहिए। या फिर

$$HCl \rightarrow H^+ + Cl^-$$

ना कि

$$HCl \rightleftharpoons H^+ + Cl^-$$
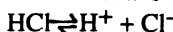
जैसा लेख में दिखाया गया है। इसी तरह कास्टिक सोड़ा के घोल को

$$NaOH \rightarrow Na^+ + OH^-$$

ऐसे दर्शाना चाहिए। गलती इसलिए बड़ी है क्योंकि जो समझाया गया है यह उससे अलग है। पेज 43 के पहले कॉलम के बड़े वाले पैराग्राफ में छपा है जितना ज़्यादा विभाजन होगा तद्नुसार pH भी उतनी ज़्यादा होगी। यहां 'ज़्यादा' की जगह 'कम' होना चाहिए।

'स्टीफन जे गूल्ड' का लेख बेहद खूबसूरत है। उसके चयन के लिए संदर्भ के संपादक मंडल को बधाई।

शशि सक्सेना, दिल्ली

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का पांचवां अंक पढ़ा। इसमें क्या, क्यों और कैसे की सटीक प्रस्तुति की गई है। भूगोल में कार्ड का खेल शिक्षण को रोचक तो अवश्य बनाता है, पर समय के अनुपात में पाठ्यक्रम सटीक न होने के कारण इस प्रक्रिया को व्यवहार में अपनाना कठिन काम है। कृपया गणित शिक्षण के लिए भी ऐसे ही खेल प्रकाशित करें।

एन.के.रावत
शास.उ.मा.शाला, पथरौटा

प्रिय संपादक,

संक्षेप में पत्रिका 'संदर्भ' प्रासंगिक है। त्रुटियां उपेक्षणीय हैं। पत्रिका की सार्थकता उसकी गुणवत्ता से है, मात्रात्मकता से नहीं। वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित इस पत्रिका में गणितीय उलझे प्रश्न और विज्ञान गल्प के साथ-साथ सामान्य अध्ययन और सामान्य ज्ञान के अंश भी प्रकाशित किए जाएं।

पांचवें अंक का आवरण पृष्ठ हृदयस्पर्शी था। 'बच्चे सीख रहे हैं....' लेख ने पुनः एक प्रश्न चिन्ह छोड़ा। बच्चों की स्वतंत्रता तभी सार्थक है जहां तक या जब तक वह आत्मानुशासित हो, कहीं स्वतंत्रता या स्वच्छंदता उच्छृंखलता तो नहीं। ऐसी स्थिति में 'स्व' पर लगाम देना अनिवार्य है।

कु. आशा बेले
शास.उ.मा.शाला, उमरानाला
ज़िला-छिंदवाड़ा, म.प्र.

प्रिय संपादक,

संदर्भ की एक प्रति से मेरा भी साक्षात्कार हुआ। आपका प्रयास उत्तम है और जैसा कि आपने अपने पत्र में लिखा है कि शिक्षकों को शिक्षण सामग्री संबंधी मदद के साथ-साथ शिक्षकों जोड़ने का कार्य भी इसके माध्यम से करना चाहते हैं।

हर काम के शुरूआत में कठिनाइयां आती हैं, हो सकता है आपके सामने भी आएं परन्तु मैं आशा करता हूं कि संदर्भ पत्रिका वास्तव में शिक्षकों के लिए एक संदर्भ का कार्य करेगी।

आज के बदलते परिवेश में शिक्षा एवं शिक्षण तरीकों की नई-नई जानकारियां यह पत्रिका उपलब्ध कराएगी ऐसी मैं कामना करता हूं। आज शिक्षण-पद्धति में नवीनता और रोचकता लाने की महती आवश्यकता है ताकि छात्र-छात्राओं की पढ़ाई में अभिरुचि बनाकर रखी जा सके।

अखिल रायजादा
डबरीपारा, बिलासपुर, म.प्र.

संदर्भ के चौथे अंक में 'एक्टिविटीज़ विद प्लास्टिक टंग क्लीनर' किताब की समीक्षा प्रकाशित हुई थी। अब इस किताब का हिंदी रूपांतर 'प्लास्टिक जीभी से विज्ञान की गतिविधियां' शीर्षक से उपलब्ध है। इसे संधान, जयपुर, राजस्थान ने प्रकाशित किया है। किताब मुफ्त में उपलब्ध है। किताब मंगाने के लिए इस पते पर लिखें –
संधान, बी-104, मनु मार्ग, तिलक नगर, जयपुर 302004

हमारी गलती. . . .
पांचवें अंक में प्रकाशित लेख 'जो छूटी रेलगाड़ी' के लेखक 'जी. एल. जायसवाल' हैं जबकि हमारी असावधानी के कारण नाम 'बी. एल. जायसवाल' प्रकाशित हो गया। इसी तरह नाम की एक और गलती पुस्तक समीक्षा 'नागरिक शास्त्र की पुस्तकों में नागरिकों की छवि' के समीक्षक के साथ हुई है। उनका सही नाम 'अमन मदान' है न कि 'अमन मदन'। इन गलतियों के लिए हमें खेद है।
संपादन मंडल

विकास – एक नज़र यह भी

वल्लाह, क्या गलती है!

• लुईस थॉमस

तरजुमा – मनोहर नोतानी

प्रकृति की अब तक की सबसे शानदार कामयाबी बिलाशक डी. एन. ए. अणु का निर्माण रहा। और यह अणु तो आज से तकरीबन तीन सौ करोड़ साल पहले ठंडाते इस ग्रह (हमारी अपनी धरती) पर मौजूद उस शोरबे में से उभरने वाली पहली कोशिका पर अंकित था; जिस शोरबे में आगे आने वाला जीवन हिलोरें ले रहा था। सीधी-सादी भाषा में कहें तो धरती पर मौजूद तमाम कोशिकाओं के ज़रिए गुंथा आज का सारा-का-सारा डी.एन.ए. उस पहले-पहले अणु का विस्तृत व परिष्कृत रूप ही है। यानी बुनियादी हिसाब से हम पक्के तौर पर यह नहीं कह सकते कि हमने तरक्की की है। वजह? प्राकृतिक जीवन में बढ़ोतरी और दोहराव के तरीकों में मूलतः कोई बदलाव आया नहीं है। लेकिन और तमाम हिसाबों से हमने तरक्की ज़रूर की है।

हालांकि विकास (evolution) के संदर्भ में तरक्की की बात आज के माहौल में कुछ बेमानी-सी लगती है। खासकर अगर 'तरक्की' लफ्ज़ के इस्तेमाल से आपका इशारा किसी तरह के 'सुधार' की तरफ हो; सुधार यानी एक ऐसा 'मूल्य' जो साइंस के दायरे से बाहर की चीज़ है। लेकिन इससे बेहतर लफ्ज़ भी तो नहीं मिल रहा है! आखिर हम समुद्री शैवालीय टेकरियों से बनी उस दुनिया

से तो बहुत दूर निकल आए हैं, जिनके बीच एक रंगहीन व फीकी-सी ज़िंदगी गुज़ार रहा था वह जीवन तंत्र, जिसमें आदिम किस्म की जैविकीय कोशिका के अलावा कुछ न था।

फिर रीढ़दारियों के दिमाग के अंदर करीने से सजी तंत्रिका कोशिकाओं का जाल 'सुधार' के अलावा और क्या कहला सकता है? उस पुरातन मूल अणु से चलते हुए हम कहीं आगे निकल आए हैं।

हां, यह तो तय है कि मानवीय बुद्धिमत्ता से हम यह सफर तय न कर पाते। फिर चाहे उसके लिए किसी दूसरे सौर-मंडल से तमाम जीवशास्त्री, तमाम उपकरण वगैरह क्यों न आयातित कर लिए जाते। यह तो अच्छा हुआ कि हमारे पास ऐसे वैज्ञानिक हैं जो विकास की हर पायदान से गुज़रे हैं। निश्चय ही इस कारण हम डी.एन.ए. के बारे में काफी कुछ जानते हैं। लेकिन खुदा-न-ख्वास्ता शुरू-शुरू में ही अगर हमारे मौजूदा दिमाग जैसे ही किसी दिमाग को इस समस्या से जूझना पड़ता कि किस तरह से अपने आप को दोहरा सकने वाला एक अणु डिज़ाइन किया जाए तो यकीनन हम कभी कामयाब न होते! हम एक घनघोर गलती करते – वह यह कि हमारे द्वारा बनाया गया अणु एकदम 'परफेक्ट' होता, बिना किसी नुक्स के! और एक समय के बाद हम उसकी एकदम त्रुटिहीन प्रतिकृतियां बनाने के लिए माकूल न्यूक्लिओटाइड्स, एंज़ाइम वगैरह जुटा लेते। लेकिन जैसी कि सोच के मामले में फितरत है; हमारे खयाले-शरीफ में यह बात कभी न समाती कि जो भी चीज़ बननी है उसमें गलती, भूल करने की काबिलियत तो हो! जबकि ज़रा-ज़रा सी गड़बड़ कर देना ही डी. एन. ए. की असली जादूगरी है। बिना इस खासियत के हम आज भी होते वही – अनऑक्सी-बैक्टीरिया* और होता संगीत से नावाकिफ एक माहौल। हमें आज के मुकाम तक लाने वाले हर म्यूटेशन, हर बदलाव को अगर हम एक-एक करके देखें तो पाएंगे कि वे महज़ इत्तफाक थे; यूं ही-सी घटी एक दुर्घटना, जो तयशुदा न थी। लेकिन बदलावों का होना कोई हादसा न था। शुरूआत से ही डी. एन. ए. का अणु छोटी-छोटी भूलें करने के फरमान से बंधा था।

और अगर यह सब हमारे मुताबिक हो रहा होता तो यकीन मानिए हमने कोई रास्ता खोज लिया होता इसे ठीक करने के लिए। नतीजतन विकास की गाड़ी के पहिए कब के जाम हो चुके होते। ज़रा कल्पना करें! प्रोकैरिओट्स** की हूबहू बेनुक्स नकलें बनाने में जुटे मानव-वैज्ञानिक और उनकी वह हकबकाहट जब अचानक उनके सामने आ खड़ी हों केंद्रकधारी कोशिकाएं। फिर तो हंगामा हो जाता। कमीशन के कमीशन बैठाए जाते – जांच के लिए। कि चहुं ओर ट्रिलोबाइट*** कैसे आ धमके? बड़े पैमाने पर बर्खास्तगियों का आलम होता! कहते

तो हैं – गलती करना इन्सानी फितरत है! लेकिन हमें यह ख्याल कुछ ज़्यादा भाता नहीं लगता। और फिर यह यकीन करना तो और भी मुश्किल है कि जैविकी का आधार ही गलती करना है। हम अपनी ही बात पर अड़े रहते हैं और किसी भी तरह के बदलाव से अपने आप को महफूज़ रखने की कोशिश करते हैं। लेकिन असल बात तो यह है कि हम शुद्धत: संयोग से ही यहां आ पहुंचे हैं या यूं कहें कि भूलवश! किसी मुकाम पर न्यूक्लिओ-टाइड्स की श्रृंखला में सेंध पड़ी, नए न्यूक्लिओटाइड्स उसमें समाए, फिर शायद कुछ वायरस ही घुस आए अपने साथ जीनोम के टुकड़े लिए!

इसके बाद सूरज या अंतरिक्ष से पहुंचे विकिरण ने विकास की सीढ़ी चढ़ते उस वक्त के अणु में कुछ बारीक-सी दरारें पैदा कीं। इन दरारों से जो शुरूआत हुई उसी से एक लम्बे अर्से बाद झांक सका मानवत्व।

पर शायद यूं भी कि इस अणु की बुनियादी ढुलमुलाहट के कारण यह तो होना ही था। क्योंकि अगर आपके पास ऐसा एक मेकेनिज़्म हो जो अपने जीने का अंदाज़ बदलता रहे; और अगर नए-नए उभरने वाले उसके विभिन्न स्वरूप आपस में ज़रूरी तालमेल बनाए रखें (जैसा कि वे यूं ही करते रहते हैं); और अगर प्रजाति के लिए किसी भी नई काबिलियत से लैस, एक नए नवेले जीन के चुने जाने की संभावना प्रबल हो; और तिस पर अगर आपके पास समय-ही-समय हो तो शायद ऐसी एक जीवन व्यवस्था बनना तय ही है जिसमें पहले तो दिमाग और आगे चलकर चेतनता का पुट होगा।

और अंत में लगता तो यही है कि विकास की कुलांचों के लिए जैविकी को अपनी खातिर 'भूल' या 'गलती' लफ्ज़ की जगह कोई ऐसा शब्द ढूंढना होगा जो उसकी क्रियाशीलता का प्रतिनिधित्व सही-सही मायनों में कर सके।

लुइस थॉमस – पेशे से डॉक्टर। न्यूयार्क में जन्मे और अमेरिका के कई जाने-माने अस्पतालों और विश्वविद्यालयों में शोधकार्य किया और चिकित्सा प्रशासन भी संभाला। उनके पेशे से उभरे अनुभवों पर निबंधों के कई संकलन किताबों के रूप में प्रकाशित हुए।
उपरोक्त लेख उनकी पुस्तक 'मेड्युसा एंड द स्नेल' (1979) से अनुदित है।
मनोहर नोतानी – एकलव्य की विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर सेवा 'स्रोत' से संबद्ध।

* वे बैक्टीरिया जिन्हें ज़िंदा रहने के लिए ऑक्सीजन की ज़रूरत नहीं होती।

** ऐसे एक कोशीय जीव जिनकी कोशिकाओं में केंद्रक मौजूद नहीं होता। बैक्टीरिया भी इसी श्रेणी में आते हैं।

*** जीवाश्मों (फॉसिल्स) से पता चलता है कि लगभग पचपन करोड़ साल पहले इस धरती पर अचानक खूब सारे बहुकोशीय समुद्री जीव पैदा हो गए। इनमें से एक थे ट्रिलोबाइट। फिर लगभग 22 करोड़ साल पहले ट्रिलोबाइट विलुप्त हो गए।

आसमान तो था, लेकिन ज़िंदगी नदारद थी

. . . . . आसमान कमोबेश वैसा ही था जैसा आज है। अलबत्ता उसमें छितरी विभिन्न गैसें ज़रूर अजीब थीं। ऑक्सीजन न होकर वायुमंडल में मीथेन थी, हाइड्रोजन थी और थी अमोनिया की कुछ वाष्प।

● मनोहर नातानी

'जीवन की उत्पत्ति' संबंधी अनुसंधान से जुड़े वैज्ञानिकों के एक तबके के मुताबिक . . . . . आज से करीब तीन सौ करोड़ साल पहले . . . . . आसमान कमोबेश वैसा ही था जैसा आज है। अलबत्ता उसमें छितरी विभिन्न गैसें ज़रूर अजीब थीं। ऑक्सीजन न होकर वायुमंडल में मीथेन थी, हाइड्रोजन थी और थी अमोनिया की कुछ वाष्प।

लेकिन ज़िंदगी नदारद थी। अपना ग्रह (पृथ्वी) चारों ओर से एक उथले निष्प्राण समुंदर से घिरा था। इधर-उधर बिखरे उजाड़-वीरान द्वीपों के अलावा कहीं कोई ज़मीन न थी। महाद्वीपों के होने का तो कोई सवाल ही न था। लेकिन चारों ओर का नज़ारा शांत भी न था। बहुत उथल-पुथल थी। हुंकारते हुए ज्वालामुखी लावा-ही-लावा उगल रहे थे। बुदबुदाते गरम-गरम सोतों से भाप और ज़हरीली गैसें फिज़ा में समा रही थीं। जब तब एक झंझा उठती और हमारी धरती को झिंझोड़ती रहती। रह-रहकर बिजली चमकती और सारा नज़ारा रोशन हो उठता। विद्युतीय आवेश ने वातावरण की तमाम गैसों में हड़कंप मचा रखा था। और नतीजतन वे कभी आपस में, तो कभी पानी के साथ रासायनिक क्रियाएं करने लगतीं। फलस्वरूप नए-नए अणु बन रहे थे जिन्हें आगे चलकर अमीनो

अम्ल व न्यूक्लियोटाइड्स का नाम दिया गया। इसके पहले ये अणु इस धरती पर न थे, और यही थे आगे आने वाले हमारे जीवन का कच्चा माल।

धीरे-धीरे और और और अमीनो अम्ल और न्यूक्लियोटाइड्स बनते गए और जमा होते गए। और उनका बना एक खूब गाढ़ा शोरबा। फिर उस गाढ़े शोरबे में हाज़िर अणु आपस में टकराते, मिलने लगे। नतीजतन बड़े, और बड़े अणु अस्तित्व में आए।

दरअसल विकास के संसार में अहम चीज़ें होने, घटने में लाखों करोड़ों बरसों का समय लग जाता है। और विकास के उस आदि काल में लाखों करोड़ों सालों के दौरान घटे अणुओं के बेतरतीब टकराव के कारण नाना प्रकार के अणु रचे गए। इनमें से कुछ तो सर्पिल थे, तो कुछ एकदम गोलाकार। और कई तो थे लंबी-लंबी चोटियों वाले।

अंततः इन तमाम अणुओं में अकस्मात ही उभर आया एक ऐसा जादुई अणु जिसमें प्रतिभा थी हूबहू अपनी ही नकल बनाने की। इस जादुई अणु में आपस में गुंथी न्यूक्लियोटाइड्स की दो लंबी लड़ियां थीं। एक दूसरे से अलग होने पर इन दो लड़ियों में से प्रत्येक ने अन्य न्यूक्लियो-टाइड्स को अपनी ओर खींचा और ऐसे बन गई इनकी दो नकलें। यानी प्रजनन की शुरुआत हो चुकी थी — एक अणु की जगह थे अब दो अणु।

आगे चलकर पुनरुत्पादन की यह प्रक्रिया कइयों बार दोहराई गई और जल्द ही उस वक्त की हमारी युवा धरती पर फैले समंदर में डोलने लगी उस मूल जनक अणु की संतानें। और यही थे जीवन के पहले-पहले रूप।

आगे जो करोड़ों साल गुज़रे उनमें अपनी ही मूरत बना सकने वाले इन शुरुआती अणुओं का विकास हुआ। आखिरकार विकास का यह सफर तय करते-करते इस धरती पर तमाम जीव छा गए, जिन्हें हम आज अपने चारों ओर पाते हैं — कीटाणु, पौधे, चूहे, मानव इत्यादि। इनमें से हरेक जीव कोशिकाओं से मिलकर बना है और कोशिकाओं का निर्माण एक ही तरह के कच्चे माल से हुआ है — अमीनो अम्ल व न्यूक्लियो-टाइड्स। हरेक ज़िंदा कोशिका के केंद्र में बसा है उस प्रथम अणु का वंशज जिसे हम आज डी.एन.ए. कहकर पुकारते हैं।

● यह लेख राबर्ट शैपिरो की किताब 'ओरिजिन्स' पर आधारित है
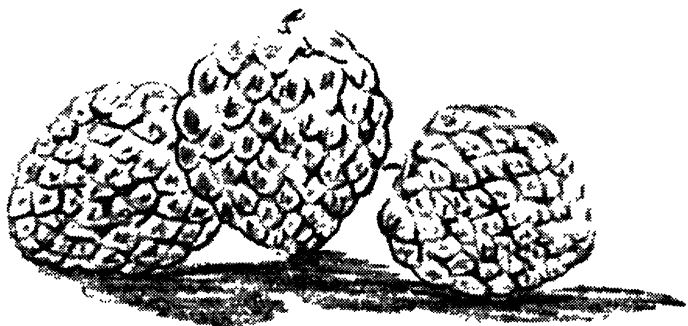
हम तो परभाकर हैं जी

सोचता हूं, हम सुसंस्कृत होने का गर्व करने वाले लोग बच्चों के प्रति कितने क्रूर हैं। बहुत निर्दयी हैं – स्कूल में भी और घर में भी। बच्चे के हर प्रश्न का, हर समस्या का, हर छोटी हरकत का एक ही इलाज है – तमाचा जड़ दो, कान खींच दो, घूंसा मार दो।

● हरिशंकर परसाई

प्राइमरी स्कूल में हमारे गुरूजी शरीफे खाते थे और हम शरीफे की छड़ी खाते थे। यह शायद 1931 की बात होगी। होशंगाबाद ज़िले में हरदा तहसील में एक बड़ा गांव था तब रहटगांव। अब अखबार में पढ़ता हूं कि वहां लायंस क्लब भी है। छोटा शहर हो गया है। इस बड़े गांव में पिताजी बस गए थे। यहां हिंदी की सातवीं कक्षा तक का स्कूल था। प्रधानाध्यापक हमारे रिश्तेदार थे। वे भी परसाई ही थे। मैं इस स्कूल में दाखिल हुआ।

हमारे स्कूल से लगा हुआ शरीफे का बगीचा था – जंगल ही था। हमारे गुरूजी शरीफा खाने के बड़े शौकीन थे। वे किन्हीं दो लड़कों से कह देते, "जाओ, इस झोले में शरीफे तोड़कर ले आओ। अच्छे लाना, जिनकी आंखें खुल गई हों। और तीन-

चार अच्छी डालियां भी तोड़ लाना।" मुझे यह काम ज़्यादा मिलता था क्योंकि मैं ऊंचा और तगड़ा था। यों शरीफे के पेड़ इतने नीचे थे कि लगभग ज़मीन से लगे थे। हम शरीफे लाते। उनमें से जो चौबीस घंटे में पकने वाले होते, उन्हें गुरूजी अलमारी में रख देते और पहले के रखे पके हुए दो-तीन निकालकर टेबिल पर रख लेते। घर ले जाने के लिए शरीफे झोले में रख लेते। वे अलमारी से चाकू भी निकालते।

वे शरीफे खाते हुए एक पवित्र अनुष्ठान करते। चाकू से उन डालियों की बड़ी कलात्मक तन्मयता से गांठें निकालकर, उन्हें छीलकर सुंदर छड़ियां बनाते। बड़ी धार्मिक तल्लीनता से। इधर हमार प्राण कांपते। उनकी यह कलाकृति हमारी हथेलियों के लिए थी। शरीफा खाकर तृप्त होकर, सुखी मनोस्थिति में वे छड़ी उठाते।

मुझे या किसी दूसरे लड़के को बुलाकर कहते, "क्यों बे, ये दो शरीफे बिलकुल कच्चे क्यों ले आया? तुझे पहचान नहीं है? हाथ खोल।" मैं या वह हाथ खोलता और दोनों हथेलियों पर एक-एक छड़ी सटाक पड़ती। हम दोनों हाथों को हिलाते और कांखों में दबा लेते। हमारे गुरूजी शरीफा खाते थे और हम शरीफे की छड़ी खाते थे। गुरूजी दिन-भर किसी भी कारण से हम लोगों को छड़ी मारते थे। पढ़ाई की भूल पर तो मारते ही थे। पर वे आविष्कारक थे। नए-नए कारण

मारने के खोजते थे। किसी से कहते, "क्यों बे, कान में अंगुली डालकर क्यों खुजा रहा है? कान साफ नहीं है? इधर आ। हाथ खोल।" इसके बाद – सटाक! "अपनी मां से कहना कि रात को कान में गरम तेल डाल दे और सबेरे जब मैल फूल जाए तो निकाल दे।"

लगभग सब अध्यापक पीटते थे बच्चों को, कोई कम, कोई अधिक। इसमें शक नहीं कि अपवाद भी होते थे। ऐसे अध्यापक मुझे आगे मिडिल स्कूल में मिले। मगर तनाव के या नफरत के सामान्य संतुलित मन से पीटते थे। मैं समझता हूं, तब आधी शताब्दी पहले, ये पिटाई को पढ़ाई का एक ज़रूरी भाग मानते थे। तब कहावत प्रचलित थी Spare the rod and spoil the child. (अगर छड़ी का इस्तेमाल नहीं करो तो बच्चे बिगड़ जाएंगे)। बच्चों को पीटना ये अध्यापक अच्छी शिक्षा का तकाज़ा मानते थे। इंग्लैंड के पुराने ग्रामर स्कूलों से यह सिद्धांत-वाक्य भारत आया था। पीटते अभी भी

सौ में से अस्सी अध्यापक पीटते थे। सोचता हूं, मेरे वे गुरूजी तथा दूसरे अध्यापक हम बच्चों को क्यों पीटते थे?

एक कारण तो यह हो सकता है कि वे 'सेडिज़्म' (पर-पीड़न प्रमोद) मानसिक रोग के मरीज़ हों। पर इतनी बड़ी संख्या में पूरा वर्ग सेडिस्ट नहीं हो सकता। एक कारण तो यह हो सकता है कि इनका वेतन बहुत कम होता है और ये परेशान तथा खीझे रहते हैं। एक कारण यह कि ये पढ़ाते नहीं हैं या बहुत कम पढ़ाते हैं।

अचरज यह कि ये बिना क्रोध या हैं – पर बहुत कम। अब तो छात्रों को पीटने के खिलाफ कानून भी बन गया है।

सोचता हूं, हम सुसंस्कृत होने का गर्व करने वाले लोग बच्चों के प्रति कितने क्रूर हैं। बहुत निर्दयी हैं – स्कूल में भी और घर में भी। हमारे घरों में देखिए। बच्चे के हर प्रश्न का, हर समस्या का, हर छोटी हरकत का एक ही इलाज है – तमाचा जड़ दो, कान खींच दो, घूंसा मार दो। बच्चा कुछ मांग रहा है, उसकी कुछ समस्या है, वह ज़िद कर रहा है, वह पढ़ने में लापरवाही कर रहा है, उसके हाथ से कोई चीज़ गिर गई – तो

एक ही हल है कि उसे पीट दो। बच्चे को समझेंगे नहीं, उसे समझाएंगे नहीं। समस्या कुल यह है कि वह या तो बोल रहा है या रो रहा है। कुल सवाल उसे चुप कराके उससे बरी हो जाने का है।

एक-दो तमाचे जड़ देने से यह काम हो जाता है। रोते हुए बच्चे को धमकाते हैं: "अरे चुप हो! चोप्प!" और चांटा जड़ दिया। चांटा तो रुलाने के लिए होता है, रोना रोकने के लिए नहीं। मगर वह बच्चा चुप तो डर के कारण हो जाता है, पर रोता और ज़्यादा है। वह बुरी तरह सिसकता है। मां-बाप को सिसकने पर कोई एतराज़ नहीं। रोते बच्चे का मूड (मनोस्थिति) बदलना चाहिए। उसकी दिलचस्पी के विषय की तरफ उसका मन मोड़ देना चाहिए। मेरे भानजे का लड़का है सोनू। क्रिकेट का शौकीन है, चित्रकला का भी। निजी मकान की अपेक्षा किराए के मकान में बगीचा ज़्यादा अच्छा लगता है। बच्चा फूलों का शौकीन है। मेरी मेज़ पर फूल लाकर रख देता है और तारीफ का इंतज़ार करता है। टेलिविज़न पर क्रिकेट देखता रहता है।

जब वह रोता है, तो मैं कहता हूं, "अरे सोनू गुरू, इस मैच में तो भारत हार ही जाएगा। रवि शास्त्री तेईस पर आउट हो गया।" वह फौरन रोना बंद करके कहता है – "क्या बात करते हो मामाजी। अभी तो अज़हर को खेलना है। चौवे पर चौवे मारता है, अज़हर!" वह सुनील गावस्कर, चेतन शर्मा वगैरह की बात करता है। खुश हो जाता है। कभी मैं कह देता हूं, "तुम्हारा बगीचा सूख गया सोनू! आज तो टेबिल पर फूल ही नहीं हैं।" वह रोना बंद करके कहता है, "अरे मेरा बगीचा कभी नहीं सूख सकता। क्या बात करते हो। अभी फूल लाता हूं।"

वह उत्साह से फूल लाता है और टेबिल पर बड़ी खुशी से सजाता है। हमारे लोग एक तो बाल-मनोविज्ञान नहीं समझते। फिर परेशान रहते हैं। काम में रहते हैं। वे एक-दो चांटे मारकर इस समस्या को फौरन हल कर देना चाहते हैं। पर बच्चे के भीतर कितना हिस्सा

मरता है। उसके विकास पर बुरा असर पड़ता है। उसे सज़ा की आदत पड़ती है। वह बड़ा होकर नौकरी करता है तो गैर-ज़िम्मेदारी से काम करता है और डांट या दूसरी सज़ा के बिना काम नहीं करता।

मैं खुद बारह साल अध्यापक रहा। याद करता हूं तो मैंने भी कभी-कभी लड़कों को पीटा था। पर बहुत कम। एक घटना को मैं अब भी याद करता हूं, तो बड़ी पीड़ा होती है। मैं मॉडल हाई स्कूल में छठवीं कक्षा में पढ़ाता था। एक चपरासी का लड़का था। वह लगातार चार दिन नहीं आया। छुट्टी का आवेदन भी नहीं था। उसने फीस भी नहीं चुकाई थी। पांचवें दिन वह आया और बहुत उदास अपनी जगह बैठ गया। मैं उसके पास गया और बोला, "अरे चार दिन तुम क्यों नहीं आए? फीस भी नहीं पटाई। नाम कट जाएगा।" मैंने तीन बार पूछा, पर वह वैसा ही खड़ा रहा। मुझे गुस्सा आ गया। मैंने डांटा, "अरे, कुछ बोलता भी नहीं है।" और एक चांटा मार दिया।

उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे। धीरे-से बोला, "सर, पिताजी की मृत्यु हो गई।" अब मेरी हालत बहुत खराब हो गई। मुझे जैसे सौ जूते पड़ गए हों आत्मग्लानि से मैं निश्चेत-सा हो गया। इतनी पीड़ा हुई कि मुझे लगा मैं पूरी कक्षा के सामने रो पडूंगा। मैं फौरन बाथरूम गया और वहां रोता रहा।
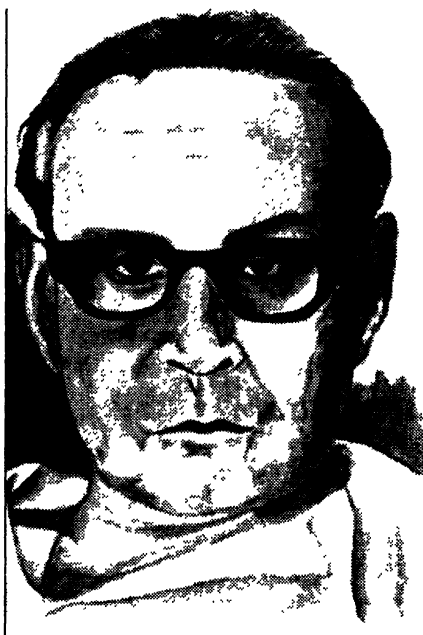
हरिशंकर परसाई
जन्म: 24 अगस्त 1924
मृत्यु: 10 अगस्त 1995

एक किताब है 'हम इक उम्र से वाकिफ हैं' – किताब क्या है, जीवनी है परसाई की, खुद उन्हीं ने लिखी है।

इसी का एक अध्याय है 'हम तो परभाकर हैं जी'। ज़रा गौर कीजिए बातें तो परसाईजी ने अपने ज़माने की लिखी हैं, लेकिन स्थिति क्या बदल पाई है आज भी?

किताब – 'हम इक उम्र से वाकिफ हैं'
लेखक – हरिशंकर परसाई
प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

सुब्रह्मण्यन चन्द्रशेखर

जिसने सितारों की सीमा तय की

● एन. पंचपकेशन

"हमें तारों के बारे में जितना कुछ पता है, उसके अधिकांश के पीछे है चन्द्रशेखर की गणितीय अंतर्दृष्टि।" यह कथन है एक अन्य विख्यात खगोल भौतिक विज्ञानी, एम.आई.टी. के फिलिप मॉरिसन का, सुब्रह्मण्यन चन्द्रशेखर के बारे में। चन्द्रशेखर, जिनका देहान्त 22 अगस्त 1995 को हुआ, भारतीय विज्ञान-छात्रों की कई पीढ़ियों के लिए न केवल एक आदर्श थे बल्कि एक मिसाल बन गए थे। एक लम्बी अवधि तक – साठ साल से भी ज़्यादा – वे खगोल भौतिकी के संसार पर छाए रहे सर्वोच्च स्तर के वैज्ञानिक के रूप में; बीस साल तक विख्यात अमेरिकी पत्रिका 'एस्ट्रो-फिज़िकल जर्नल' के संपादक रहकर और एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसकी दुनियावी परिप्रेक्ष्य की स्वाभाविक तलाश ने तारों के जीवन और मृत्यु के बारे में हमें एक बुनियादी समझ और नज़रिया दिया। अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में, जहां उन्होंने अपने जीवन के साठ साल बिताए, वे एक किंवदन्ती थे। जब मैं शिकागो में था, मैंने सुना कि एक प्रसिद्ध चित्रकार द्वारा बनाए गए चन्द्रशेखर के चित्र का वहां के भौतिकी विभाग में अनावरण हुआ है। मैं उसे देखने गया

और वहां मौजूद एक जापानी छात्र से पूछा कि चित्र कहां है। "आप चित्र क्यों देखना चाहते हैं, जब आप स्वयं उस महापुरुष को देख सकते हैं?" छात्र ने बड़े उत्साह के साथ कहा। अफसोस! अब यह संभव नहीं होगा।

सत्य, सुंदरता और प्रकृति

अपनी पुस्तक 'Truth And Beauty' में चन्द्रशेखर ने बताया है कि किस प्रकार वे सत्य और सुन्दरता की खोज में जुटे रहे, विज्ञान में भी और साहित्य जैसे जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी। आजीवन उनका उद्देश्य रहा प्रकृति को एक एकीकृत, सुसम्बद्ध गणितीय तरीके से समझना। अन्त तक वे इसी उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहे। अपने ही अंदाज़ में जुटे रहकर उन्होंने तारों के विकास और तारों के जीवन के अन्तिम चरणों — श्वेत वामन, न्यूट्रॉन तारा तथा ब्लैक-होल — के बारे में महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित किए। इन तीनों अन्तिम अवस्थाओं को समझने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। श्वेत वामनों के बारे में उनके निष्कर्ष एक लम्बे अरसे तक माने नहीं गए। अंततः इस काम के लिए उन्हें 1983 में नोबेल पुरस्कार मिला, इस विषय पर उनके शोध के पचास साल बाद।

चन्द्रशेखर का जन्म लाहौर में हुआ था। उन्होंने मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज में अध्ययन किया। उनके पिता वरिष्ठ सरकारी अधिकारी थे और विज्ञान व संगीत से भली-भांति परिचित थे। विख्यात सी.वी. रमन, जिन्हें 'रमन प्रभाव' के आविष्कार के लिए 1930 में नोबेल पुरस्कार मिला था, उनके चाचा थे। कॉलेज में रहते ही 19 साल की उम्र में चन्द्रशेखर ने शोधकार्य शुरू कर दिया और इसके बारे में उनका एक शोधपत्र छपा भी। इंग्लैंड में केम्ब्रिज में पी.एच.डी. करने के बाद उन्होंने कुछ समय तक वहीं 'फेलो' के रूप में काम किया। सन् 1936 में चंद्रशेखर इंग्लैंड से अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय चले गए। 1937 में उनका विवाह उनकी सहपाठिनी ललिता से हुआ। उनके साथ वे शिकागो लौट गए और अंत तक वहीं रहे।

अध्ययन और नई किताब

उनके काम करने की शैली कुछ ऐसी थी· उन्हें किसी विषय में रुचि हो जाती तो वे उसका अध्ययन अपने परिप्रेक्ष्य से अपनी समझ बनाने के लिए करते, उस विषय पर एक प्रामाणिक पुस्तक लिखते और फिर किसी दूसरे विषय पर चले जाते। इस तरह से उन्होंने तारों की संरचना, तारों के विकास और उनके अंदर की क्रियाओं, तारों में विकिरण स्थानांतरण, प्लाज़्मा भौतिकी, न्यूट्रॉन तारों में संतुलन और ब्लैक-होल पर किताबें लिखीं।

ये सारी पुस्तकें अब तक क्लासिक का दर्जा पा चुकी हैं, जिन्हें वैज्ञानिकों की कई पीढ़ियों ने इस्तेमाल किया है। आखिर के कुछ वर्षों में उन्हें प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन द्वारा लिखी गई किताब 'प्रिन्सिपिया' में दिलचस्पी हो गई थी? उन्होंने *'आम आदमी के लिए न्यूटन की*

कला और विज्ञान

मैंने सन 1975 के बाद जितने भी व्याख्यान दिए हैं उन सबमें दो-एक मुद्दे ऐसे हैं जो लगातार चलते हुए नज़र आते हैं – किसी-न-किसी संदर्भ में उनकी बात आती ही है।

उनमें से एक तो है, विज्ञान में सुंदरता की तलाश। और दूसरा, जिस पर एक व्याख्यान में मुझे खासतौर पर बोलने को कहा गया था – विज्ञान और कला में सृजनात्मकता के तौर-तरीकों और मापदंडों में फर्क की शुरुआत कैसे हुई होगी।

दोनों तरह की सृजनात्मकता में अंतर है उसके बारे में दो राय नहीं हो सकती – विशेष तौर पर अगर आप एक कलाकार और एक वैज्ञानिक के काम की तुलना करें तो यह फर्क साफ दिखाई देता है।

एक कलाकार की कृतियों को आमतौर पर तीन अवस्थाओं में बांटकर परखा जाता है – शुरुआती कृतियां, बीच का दौर और अंतिम रचनाएं। और माना जाता है कि समय के साथ-साथ कृतियों में गहराई और परिपक्वता आती है। पर वैज्ञानिक का आकलन इस तरह से नहीं किया जाता; उसका मूल्यांकन उन चंद खोजों के महत्व पर आधारित होता है जिनसे विज्ञान के सिद्धांतों या जानकारी में कुछ नया जुड़ा हो। और आमतौर पर वैज्ञानिकों की महत्वपूर्ण खोज उनके शुरुआती दौर में होती है। जबकि कलाकार की सबसे परिपक्व और महत्वपूर्ण रचना उसकी आखिरी कृति हुआ करती है।

मुझे कला और विज्ञान के बीच यह विरोधाभास अब भी सोच में डाल देता है।

एस. चंद्रशेखर

8 दिसम्बर 1986

(एस. चंद्रशेखर द्वारा संपादित उनके अपने व्याख्यानों के संकलन 'ट्रुथ एंड ब्यूटी' से)

प्रिन्सिपिया' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी। यह किताब उनकी मृत्यु के कुछ महीने पहले ही प्रकाशित हुई। वे न्यूटन की गणितीय और वैज्ञानिक क्षमताओं के कायल थे। उन्हें बहुत सारे पुरस्कारों व पदकों से सम्मानित किया गया। दुनिया की लगभग सभी महत्वपूर्ण अकादमिक सभाओं के वे सदस्य चुने गए थे। सन् 1983 में उन्हें भौतिकी में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

तारों का जीवन चक्र

इस साल दीपावली (24 अक्टूबर 1995) को संपूर्ण सूर्यग्रहण होने वाला है। सूर्य और उसके ग्रहण से जुड़े अंधविश्वासों के बारे में तो हम जानते ही हैं। कहते हैं न कि ज्ञान ही डर और अंधविश्वास को दूर करने में सबसे ज़्यादा सहायक होता है – तो चंद्रशेखर जैसे खगोल भौतिक विज्ञानी के काम के कारण
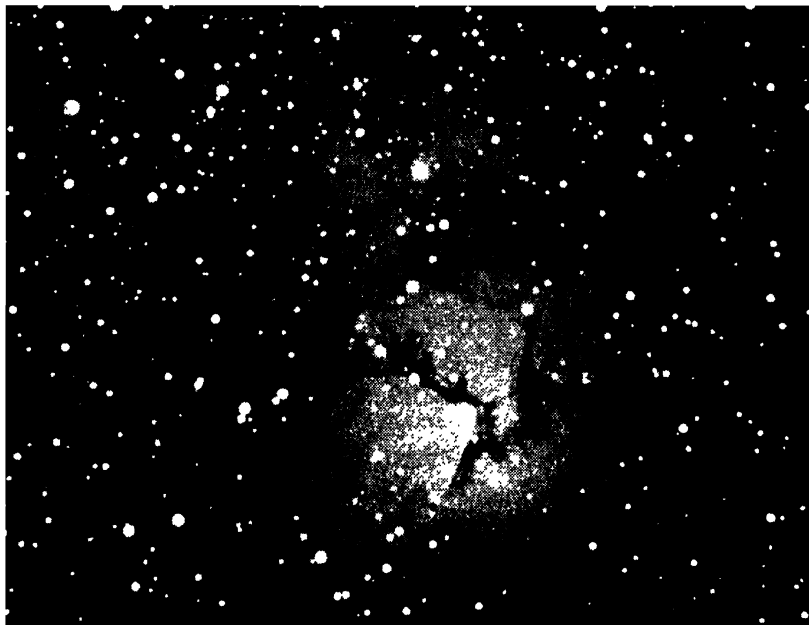
नेब्युला M 20 ट्रिफिड का फोटो: ऐसे नेब्युला में ही तारों का जन्म होता है। ये मुख्यत: अंतरिक्ष में फैले हुए गैस और गर्द के बहुत ही बड़े बादल होते हैं जिनमें गुरुत्वाकर्षण बल की वजह से जगह-जगह पदार्थ के पास-पास आ जाने और सिकुड़ने के कारण नए-नए तारे पैदा होते रहते हैं। नेब्युला में कुल मिलाकर हाइड्रोजन ही होती है, अन्य तत्व तो बहुत ही कम मात्रा में पाए जाते हैं।

हम आज सूर्य और अन्य तारों के जीवन और मृत्यु के बारे में बहुत कुछ जान पाए हैं। तारों आदि को लेकर बनी हमारी अंधविश्वासी धारणाओं को दूर करने में इस सब जानकारी से भी मदद मिलती है।

तारों की ऊर्जा आती है नाभिकीय क्रियाओं से, जिनमें हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित होती है। यह ऊर्जा और तेज़ गति वाले कणों से उत्पन्न दबाव तारे को संतुलित स्थिति में रखते हैं। नहीं तो गुरुत्वाकर्षण बल के कारण तारे एकदम सिकुड़ जाते। अर्थात ईंधन के रूप में हाइड्रोजन की उपलब्धता ही सूर्य या तारे की स्थिरता का कारण है। जब सारी हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित हो जाती है तो हीलियम अन्य भारी तत्वों में

परिवर्तित होने लगती है। इस तरह तब तक ऊर्जा मिलती रह सकती है जब तक तत्व लोहे में परिवर्तित नहीं हो जाते। तारे को इस अवस्था तक पहुंचने में कई लाख साल लगते हैं। उसके बाद तारे में संतुलन बनाए रखने के लिए कोई ईंधन उपलब्ध नहीं होता, और तारा सिकुड़ने लगता है। सिकुड़ने से तापमान बढ़ता है और तारा लाल दानव बन जाता है; और ज़्यादा सिकुड़ने से तारे में प्रचण्ड विस्फोट होगा। इस चरण को 'सुपरनोवा' कहते हैं।

इस विस्फोट की वजह से बहुत सारा पदार्थ अंतरिक्ष में बिखर जाता है। इसके बाद तारा तीन अंतिम अवस्थाओं में से किसी एक की तरफ बढ़ जाता है। वह श्वेत वामन बन सकता है, या न्यूट्रॉन तारा, या फिर ब्लैक-होल।

साठ साल से भी अधिक पहले चन्द्रशेखर ने पहली बार दिखाया कि श्वेत वामन का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से लगभग 1.4 गुना से ज़्यादा नहीं हो सकता। अतः हमारा सूर्य श्वेत वामन बनेगा। पर अधिक द्रव्यमान वाले तारे श्वेत वामन या न्यूट्रॉन तारा नहीं बन सकते। अगर किसी तारे का द्रव्यमान सूर्य से 1.4 गुना से ज़्यादा है तो वह तारा श्वेत वामन या न्यूट्रॉन तारा तभी बन सकता है — अगर वह सुपरनोवा विस्फोट के समय इस अतिरिक्त पदार्थ (द्रव्यमान) को अंतरिक्ष में फेंक दे। अर्थात सुपरनोवा विस्फोट के बाद उसका द्रव्यमान सूर्य से 1.4 गुना से कम हो जाए। यदि वह अतिरिक्त पदार्थ को बाहर नहीं फेंकता तो उसे ब्लैक-होल ही बनना पड़ेगा।

आलोचना और चंद्रशेखर सीमा

जब चन्द्रशेखर अपने इस निष्कर्ष पर पहुंचे तब किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि ब्लैकहोल जैसी कोई चीज़ हो सकती है। विख्यात खगोल भौतिक विज्ञानी एडिंगटन ने इस परिणाम को मानने से इन्कार कर दिया और चंद्रशेखर के काम की जमकर आलोचना की। उस दौर में एडिंगटन का रुतबा ऐसा था कि उनकी आलोचना काफी माएने रखती थी। इसी आलोचना के चलते चन्द्रशेखर को इंग्लैड छोड़कर नौकरी के लिए अमेरिका जाना पड़ा। जैसे कि पहले कहा गया है, श्वेत वामनों के द्रव्यमान की कोई सीमा होती है, इस बात को मान्यता मिलने में बहुत समय लगा। सूर्य के द्रव्यमान से लगभग 1.4 गुना द्रव्यमान की यह सीमा अब **'चन्द्रशेखर सीमा'** के नाम से जानी जाती है।

'चन्द्रशेखर सीमा' क्वांटम यांत्रिकी की उन धारणाओं का सीधा परिणाम है जिनका आविष्कार उससे कुछ ही पहले हुआ था। भौतिकी की नई धारणाओं पर आधारित इन परिणामों को मानने के लिए एडिंगटन कतई तैयार नहीं थे। खगोलशास्त्र में उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व ने चन्द्रशेखर की धारणाओं को सर्वमान्य होने से रोका। 'चन्द्रशेखर सीमा' को किसी पुरस्कार से सम्मानित होने में लगभग 40 साल लगे, और नोबेल पुरस्कार में और दस साल। चन्द्रशेखर ने एक बार मज़ाक में कहा था कि नोबेल पुरस्कार मिलने से वे उस स्थिति से बच गए जिसमें सेना के एक जनरल ने अपने

आप को पाया था। जनरल की छाती पर बहुत सारे तमगे लगे हुए थे। एक महिला ने उनसे उन तमगों के बारे में पूछा तो जनरल ने कहा कि सबसे पहला गलती से मिला था और बाकी इसलिए मिले क्योंकि लोग पहले वाले से लगातार प्रभावित होते रहे!

पूरी कक्षा को नोबेल पुरस्कार

चन्द्रशेखर के जीवन के आखिरी 30 साल सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत (General Theoty Of Relativity) व गुरुत्वाकर्षण के अध्ययन में और ब्लैक-होल का असर क्या होता होगा यह समझने में बीते। उनकी 'सीमा' के कारण ही सिद्ध हुआ था कि ब्लैक-होल का अस्तित्व होगा ही – अतः उनके लिए ब्लैक-होल का अध्ययन करना स्वाभाविक था। इस अध्ययन का परिणाम था 1982 में प्रकाशित उनकी पुस्तक – कृष्णविवरों का गणितीय सिद्धांत। इस अध्ययन में बहुत विस्तृत और जटिल गणनाओं की आवश्यकता पड़ी, जो किताब में पूरी तरह से नहीं दी जा सकती थीं। अतः इन विस्तृत गणनाओं समेत उनकी कापियां शिकागो विश्वविद्यालय की रेगेनस्टाइन लाइब्रेरी में रखीं गई हैं ताकि कोई समझना चाहे तो उन्हें देख सके और ज़रूरत हो तो उनका सत्यापन कर सके! इस उम्र में लगन के साथ इतने जटिल गणित के साथ जूझना बहुत कम लोगों के लिए संभव है।

वे 1966 तक येरकिस वेधशाला में थे और विश्वविद्यालय में अपनी कक्षा को पढ़ाने के लिए कार चला कर शिकागो जाते थे। एक बार उनकी कक्षा में केवल दो छात्र थे। जब किसी ने पूछा कि वे सिर्फ दो छात्रों के लिए गाड़ी चला कर क्लास लेने क्यों जाते हैं, तो उन्होंने कहा, "मेरी पूरी क्लास को नोबेल पुरस्कार मिला हुआ है।" वे दो छात्र थे टी.डी. ली और सी.एन. यांग, जिन्हें 1957 में भौतिकी में नोबेल पुरस्कार मिला। चन्द्रशेखर और उनकी पत्नी बहुत सादा जीवन व्यतीत करते थे। चन्द्रशेखर भारत में हो रही राजनैतिक और अन्य घटनाओं में दिलचस्पी लेते थे, और महात्मा गांधी और नेहरू के प्रशंसक थे। जब 1968 में उन्हें जवाहरलाल नेहरू स्मारक भाषण देने के लिए कहा गया तब वे फूले नहीं समाए।

वे विख्यात गणितज्ञ रामानुजन से बहुत प्रभावित थे और मद्रास में रामानुजन संस्थान की स्थापना में कुछ हद तक उनका हाथ भी था। उन्होंने दो-एक बार भारत लौटने के बारे में सोचा था, पर घटनाक्रम ने ऐसा होने नहीं दिया। उनके जीवन का बहुत अच्छा विवरण कामेश्वर वाली द्वारा लिखित पुस्तक 'CHANDRA' में है – खासतौर पर 'चन्द्रा' के आखिरी हिस्से में *चन्द्रशेखर* और *वाली* के बीच विभिन्न मुद्दों पर हुई चर्चाओं का ज़िक्र उनकी सोच और नज़रिए के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

एन. पंचपकेशन – दिल्ली विश्वविद्यालय में खगोल भौतिकी के प्राध्यापक।

वनस्पति जगत में रूपांतरण पहचानने का आधार

कौन पत्ती, कौन तना और कौन फूल

मीनूभाई परबिया

क्या आपने प्राणियों के लिए किसी को कहते सुना है कि यह जो बाहर से कान जैसा दिखता है वो दरअसल उंगली का रूपान्तरण है, या कि यह उनके पैर नहीं हाथ हैं, या कान जैसी दिखने वाली रचना असल में आंख है? परन्तु पेड़-पौधों के लिए कितनी स्वाभाविकता से ये सब बातें कही जाती हैं और हम सब बिना कोई सवाल पूछे उन्हें मान भी लेते हैं। अदरक को जड़ की जगह तना कह देते हैं, प्याज़ को पत्तियां, नागफनी की हरी-हरी-सी दिखने वाली बड़ी-बड़ी पत्तियों को तना,... और भी पता नहीं कितनी तरह के रूपान्तरण की बात पेड़-पौधों की पढ़ाई करते वक्त की जाती है। किसी पेड़ पर कांटा लगा हो तो क[illegible] यह टहनी का रूपान्तरण [illegible] किसी पौधे पर लगे कांटों [illegible] पत्र कह दिया जाता है,..

बस मन में [illegible] फि[illegible] उसी के मुताबिक पेड़-पौधों के किसी भी हिस्से को कुछ भी कह दिया या फिर इन बातों के पीछे कोई आधार भी होता है। कैसे तय किया जाएगा कि यह कांटा है, पत्ती है, तना है या शाखा। इन बातों का ज़िक्र आमतौर पर न तो कक्षाओं में होता है और न ही पढ़ाई जाने वाली किताबों में; परन्तु कौन किसका रूपांतरण है यह ज़रूर बेधड़क बता दिया जाता है। आइए, इस लेख में इसी सब के बारे में कुछ बातचीत करते हैं।

कौन-सा हिस्सा कहां: कौन-सी रचना किस हिस्से का रूपांतर है इसे समझने के लिए ज़रूरी है कि हमें इस बात की जानकारी हो कि पौधे का कौन-सा अंग कहां होता है – चाहे वो ज़मीन के नीचे दबा जड़ वाला हिस्सा हो या फिर ऊपर निकला तने वाला हिस्सा। यह रेखाचित्र एक फूल देने वाले (फूलदार) पौधे का है। पौधे में विभिन्न रचनाओं का एक निश्चित स्थान होता है। जैसे पत्ती जहां तने या टहनी से मिलती है वहां पर एक कलिका होगी ही। और उसी में से निकलेगी नई टहनी या फिर फूल। इसी तरह की निश्चितता पौधे के अन्य हिस्सों में भी पाई जाती है।
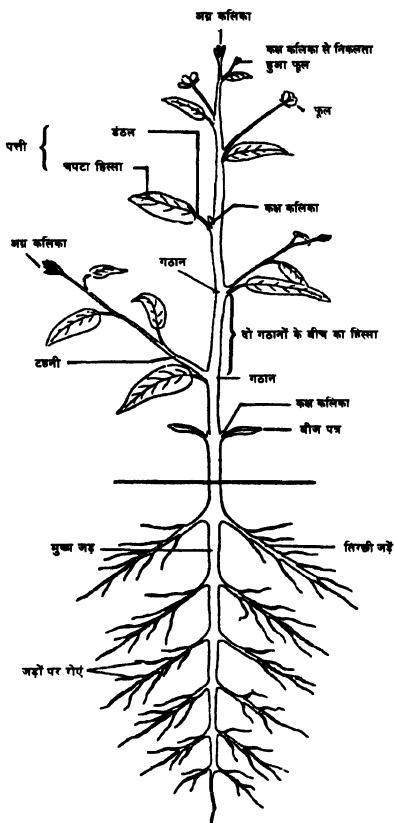
पेड़-पौधों में रूपान्तरण पहचानने के लिए दो तरीके अपनाए जाते हैं। एक तो सिर्फ बाहरी अवलोकन से, यानी कि ध्यान से देखकर कि कोई खास रचना कैसी है, वह पेड़ के किस हिस्से पर है, उसमें से कुछ और अंग निकले हैं क्या, उसके इर्द-गिर्द और कौन-सी रचनाएं हैं...। और दूसरा तरीका है कि उस रचना के आसपास काट लेकर देखें कि वह अंदर से कैसी दिखती है, कहां से जुड़ी हुई है, पास-पड़ोस में और क्या-क्या है, आदि...।

कहां किसकी जगह

पहले तरीके के लिए यह ज़रूरी है कि हमें मालूम हो कि किसी भी पौधे में जो रचनाएं होती हैं उन सबका एक निश्चित स्थान होता है - कोई भी हिस्सा कहीं भी नहीं उग आता।

जैसे कि पत्ती जहां भी तने या शाखा से जुड़ी हो वहां पर एक कली जैसी रचना ज़रूर पाई जाती है जिसे कक्ष-कलिका कहते हैं। नई शाखाएं इन्हीं कक्ष-कलिकाओं में से ही निकल सकती हैं। और फूल भी यहीं से निकलते हैं। ऐसे ही टहनियों या शाखाओं के अगले सिरे यानी टोच पर एक कली होती है जिसे अग्र-कलिका कहते हैं और शाखाओं में इसी

की वजह से वृद्धि होती है।

कई बार पत्तियों के नीचे की तरफ दो रचनाएं मिलती हैं जो एक तरह से पत्ती का ही हिस्सा हैं और उन्हें निपत्र या सहपत्र कहा जाता है।

शुरूआत के लिए इन पांच-छः हिस्सों की पहचान बनाना काफी होगा परन्तु एक बात का ख्याल रखिएगा कि सिर्फ इस लेख को अथवा किताब में पढ़ लेने भर से कभी भी पहचान नहीं बनती - आपको अपने आसपास दिखने वाले अनगिनत पौधों में इन्हें ढूंढना होगा, तलाशना होगा, पहचानने की कोशिश करनी पड़ेगी। क्योंकि असलियत में हर पौधे में ये सब अंग न तो उतने स्पष्ट होते हैं जैसे किताबों में दिखाए जाते हैं और न ही पहचानने में उतने आसान जैसा कि इस लेख से लग रहा होगा!

कहीं कक्ष-कलिका इतनी छोटी होगी कि अच्छी तरह से देखने के लिए शायद हेंडलैंस का इस्तेमाल करना पड़े, तो कहीं पत्ती छोटी-सी और निपत्र खूब बड़े-बड़े,...आपको भ्रम में डालने के लिए न जाने कितनी भूल-भूलैया रची गई हैं! परन्तु एक बार पौधों से आपकी दोस्ती हो जाए और इन पांच-सात मुख्य रचनाओं को आप जानने लगें तो फिर रूपान्तरण पहचानना भी आसान हो जाता है। आइए, रूपान्तरण की बात कांटों से शुरू करें।

कांटों का बाहरी अवलोकन

नींबू का पौधा तो आप सबने देखा ही होगा। खूब सारे कांटे होते हैं, इसलिए

चित्र : नींबू पर कांटे और पत्तियां

नींबू तोड़ते वक्त अपनी अंगुलियों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं कांटों में उलझ न जाएं। क्या कभी आपने गौर किया है कि नींबू के पौधे पर कांटे कहां लगे होते हैं? पत्ती जहां तने या टहनी से मिलती है एकदम वहां, पत्ती के कक्ष में, जहां कक्ष-कलिका को होना चाहिए था। वो कक्ष-कलिका जिससे फिर एक नई शाखा बन सकती थी, यहां पर एक कांटे में बदल गई है। इसलिए कांटा अकेला है और पत्ती के कक्ष में है। यही वजह है कि नींबू के पौधे पर लगे कांटों को कक्ष कलिका या शाखा का रूपान्तरण कहा जाता है।

अब बेर के पेड़ को देखें। इस पर भी खूब सारे कांटे हैं। ये सब भी क्या नींबू की तरह पत्तों के कक्ष में लगे हैं? नहीं न, ये तो डंठल के नीचे
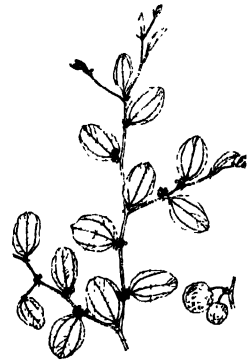
चित्र : बेर पर कांटे और पत्तियां
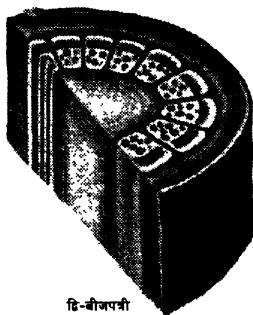
द्वि-बीजपत्री
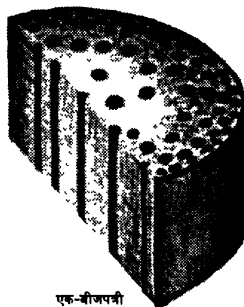
एक-बीजपत्री

एक-बीजपत्री और द्वि-बीजपत्री: पौधे के हर हिस्से में भोजन और पानी पहुंचाने वाली नलिकाएं होती हैं। तने को काटें तो ये नलिकाएं साफ दिखाई देती हैं। एक-बीजपत्री और द्वि-बीजपत्री पौधों के तने में इन नलिकाओं का जमाव अलग-अलग तरह का होता है। दोनों प्रकार के पौधों के तनों की जो काट इस चित्र में दिख रही है उसमें इस अंतर को साफ देखा जा सकता है – द्वि-बीजपत्री में भोजन, पानी पहुंचाने वाली नलिकाएं करीने से रिंगनुमा आकृति में जमीं और एक-बीजपत्री में पूरे तने में बिखरी हुई। नलिकाओं के इन गुच्छों को संवहन पूल भी कहते हैं।

अध्ययन के लिए ज़रूरी बातें

पेड़-पौधे की आंतरिक रचनाओं का इतनी बारीकी से अध्ययन करने के लिए न सिर्फ काट बहुत ध्यान से काटनी होंगी पर शायद उनके लिए विशेष विधियों का इस्तेमाल भी करना पड़े। कुछ विशेष हिस्सों को उभारने-देखने के लिए रंजक भी ज़रूरी होते हैं। और अंत में चाहिए एक उम्दा किस्म का माइक्रोस्कोप।

की तरफ हैं और वो भी अकेले नहीं, हर जगह दो-दो की जोड़ियों में हैं। साफ है न कि पत्ती के डंठल के नीचे जहां सहपत्र होने चाहिए थे वहीं पर दो-दो की जोड़ में कांटे लगे हुए हैं। इसलिए बेर में कांटों को सहपत्र का रूपान्तरण कहा जाता है। बबूल के कांटों के बारे में तो कोई दो राय हो ही नहीं सकती क्योंकि संयुक्त पत्तियों के साथ ही दो-दो की जोड़ में दिखाई देते हैं ये कांटे।
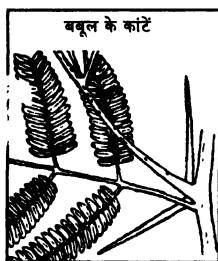
बबूल के कांटें

गुलाब में और ही तरह के कांटे दिखाई देते हैं। बहुत ध्यान से देखने पर भी आप उनका कोई निश्चित स्थान तय नहीं कर पाएंगे कि ये कांटे फलां रचना के साथ ही पाए जाते हैं। गुलाब के पौधे पर आपको किसी भी जगह कांटा मिल जाएगा - कोई निश्चित स्थान नहीं होगा उसका। ऐसा लगता है मानो ये ऊपरी चमड़ी में से ही निकल आए हैं, पत्ती, टहनी, फूल आदि से इनका कोई संबंध ही नहीं है।

पौधों की आंतरिक रचना

बाहर से अवलोकन करने पर तो नींबू, बेर और गुलाब के कांटों में अंतर नज़र आया जिसकी वजह से हम तय कर पाए कि किस पौधे में कांटे किस
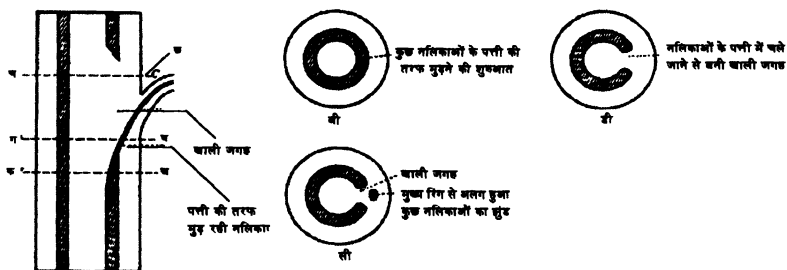
क्या-क्या समझें काट से: ए. – तने की खड़ी काट, बी. सी. डी. – अलग-अलग जगह से ली गई तने की आड़ी काट। पत्ती को वृद्धि के लिए भोजन-पानी चाहिए, इस कारण भोजन पानी पहुंचाने वाली नलिकाओं के झुंड में से कुछ मुड़कर पत्ती में चली जाती हैं। नलियों के इस तरह मुड़ने से एक खाली-सी जगह बन जाती है। दो तीन जगह से तने की आड़ी और खड़ी काट लेकर इस स्थिति को सिलसिलेवार समझा जा सकता है।

अंग का रूपान्तरण हैं। परन्तु इस बात को और पक्का करने के लिए पौधों की आंतरिक रचना देखनी होगी। खासतौर से उन नलिकाओं को जो जड़ों से पानी सोखकर पूरे पौधे को पहुंचाती हैं और भोजन को भी इधर-उधर लेकर जाती हैं। एक-बीजपत्री और द्वि-बीजपत्री पौधों में इन नलिकाओं के गुच्छे अलग-अलग तरह से जमे रहते हैं। नलिकाओं के इन गुच्छों को संवहन पूल भी कहते हैं।

भोजन और पानी वहन करने वाली इन नलिकाओं की ज़रूरत तो पौधे के हर हिस्से को होती है इसलिए जब भी तने या शाखा में से कोई नई रचना निकलती है तो चित्र में दिखाई गई नलिकाओं में से कुछ उस नई रचना की तरफ मुड़ जाती हैं और उसमें भोजन-पानी पहुंचाती हैं।

आइए, इस बात को समझने के लिए चित्रों का सहारा लेते हैं। चित्र-ए में पौधे के तने में से एक पत्ती निकल रही है। इस तने की अलग-अलग जगह से काट लेकर देखते हैं कि तने के अंदर पत्ती बनने की प्रक्रिया कैसी दिखती है। अगर 'क ख' स्थान पर इस तने की आड़ी काट लें तो हमें मुख्यतः ये नलियां एक रिंग-नुमा आकृति में जमी दिखती हैं। (चित्र-बी) पत्ती वाले हिस्से की तरफ एक काला-सा बिन्दु दिखता है जो उस तरफ की नलिकाओं के पत्ती की तरफ मुड़ने की शुरूआत है।

अगर थोड़ा-सा ऊपर 'ग घ' पर से तने की आड़ी काट लें तो उसमें कुछ नलिकाओं का एक झुंड इस नलिकाओं की रिंग में से अलग होता हुआ साफ दिखता है। (चित्र-सी) इसके कारण पत्ती की तरफ मुड़ रही इन नलिकाओं और तने में जमी हुई नलिकाओं की रिंग के बीच खाली जगह-सी दिखने लगी है।

अगर काट थोड़ा-सा और ऊपर जाकर 'च छ' पर लें तो फिर हमें केवल वह खाली जगह दिखाई देती है जहां से कुछ नलिकाएं पत्ती में चली गई हैं। (चित्र-डी)

इसी तरह जब भी तने या शाखा में से कोई नया अंश फूटता है तो अगर वहां पर हम दो-तीन जगह तने या शाखा
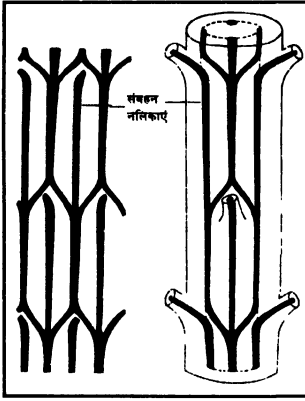
.कैसे मुड़ती हैं नलिकाएं: संवहन नलिकाओं का एक सरल रेखाचित्र — भोजन-पानी ले जाने वाली संवहन नलिकाएं आपस में एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं। इसलिए पत्ती या फूल या फिर किसी और अंग की ओर मुड़ने वाली नलिकाओं के आगे का हिस्सा इन नलिकाओं के मुड़ने के बाद वहीं खतम हो जाता है, परंतु उनकी जगह लेने के लिए अन्य नलिकाएं आ जाती हैं, जिससे फिर से रिंगनुमा आकृति पहले जैसी हो जाती है।

की आड़ी काट लें तो हमें मुड़ती हुई नलिकाएं और उनके मुड़ने से पैदा हुई खाली जगह साफ दिखती है। पत्ती के कक्ष में लगी कक्ष-कलिका या शाखा में भी भोजन-पानी के इंतज़ाम के लिए इसी तरह, कुछ नलिकाएं जाती हैं। पत्ती के नीचे अगर सहपत्र हों तो उनकी तरफ भी कुछ नलिकाएं मुड़ती दिखाई देंगी।

यहां पर हमने नए फूट रहे अंगों की तरफ इन नलिकाओं का मुड़ना और उस वजह से पैदा होने वाले खाली स्थान को समझने के लिए चित्र को थोड़ा-सा सरलीकृत किया है। दरअसल बहुत ही कम पौधों में ये नलिकाएं इस तरह के गोल रिंगनुमा आकार में जमी होती हैं। एक-बीजपत्री और द्वि-बीजपत्री पौधों की संवहन नलिकाओं को तो हमने लेख की शुरूआत में बने चित्र में देखा था। दरअसल तने और शाखाओं में इन नलिकाओं के गुच्छे लगातार आपस में मिलते रहते हैं और एकदूसरे से अलग होते रहते हैं। इस चित्र से बात शायद कुछ स्पष्ट हो (चित्र : संवहन नलिकाओं का रेखाचित्र)।

रूपातरण की पहचान

अब वापस आते हैं रूपान्तरण पर और देखते हैं कि कांटों के आसपास के इलाके में टहनियों की आड़ी काट लेकर और इन नलिकाओं की जमावट देखकर कुछ कहा जा सकता है क्या, कि ये कांटे किन अंगों का रूपान्तरण होंगे। अगर हम नींबू, बेर और गुलाब के कांटों के आसपास, शाखाओं की आड़ी काट लेते हैं तो देखते हैं कि:

1. नींबू में पत्तियों में मुड़ने वाली नलिकाओं के बाद कांटे की तरफ कुछ नलिकाएं मुड़ती हुई दिखती हैं मानो वे कक्ष-कलिका या शाखा में जा रही हों। क्योंकि पत्ती के अंत में ऊपर की तरफ यही रचनाएं होती हैं।
2. बेर में पत्ती से पहले नीचे की तरफ ही शाखा में से नलिकाओं के दो झुंड कांटों में जाते दिखाई देते हैं जैसे कि वे सहपत्रों में जा रहे हों।
3. और गुलाब में नलिकाओं के झुंड कांटों में जाते नहीं दिखते यानी कि
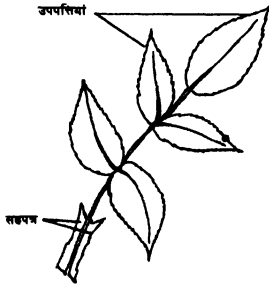
गुलाब की संयुक्त पत्ती
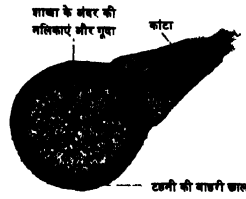
गुलाब की संयुक्त पत्ती और कांटे की आड़ी काट: गुलाब के कांटे का टहनी के अंदर के हिस्से से कोई संबंध नहीं है; कांटा सिर्फ टहनी की बाहरी परत या छाल से जुड़ा होता है। आड़ी काट में यह बात स्पष्ट दिख रही है। यानी गुलाब का कांटा उस बाहरी छाल का ही रूपांतरण हो सकता है।

इन कांटों का पेड़ के अंदर की रचनाओं से कुछ लेना-देना नहीं है; सिर्फ ऊपरी छाल से जुड़े हैं गुलाब के ये कांटे।

इसीलिए नींबू के कांटे खींचने पर भी आसानी से नहीं टूटते जबकि गुलाब के कांटे थोड़ा-सा ज़ोर देने पर चटक जाते हैं।

इन तीन-चार पौधों के अलावा कुछ और कांटे वाले पेड़-पौधों में पहचानने का प्रयास कीजिए कि उनमें कांटे कौन-सी रचना का रूपांतरण हैं। जब उन्हें पहचानना आपके बाएं हाथ का खेल हो जाए तो नागफनी के कांटे ध्यान से देखना एक अच्छा अभ्यास होगा! आपको यह पहचानना होगा कि उसके कौन-से कांटे पत्तियों का रूपान्तरण हैं और कौन-से शाखाओं का? शायद नागफनी पर इनके अलावा भी आपको और बहुत से रूपान्तरण मिल जाएं!

तंतु किसका रूपांतरण

कांटों की बात बहुत हो गई। आइए, एक अन्य रूपांतरित रचना की बात करें। कई पौधों में एक तंतुनुमा रचना होती है जो खासतौर पर बेलों को ऊपर चढ़ने में मदद करती है। हम यहां पर उसे तंतु ही कहेंगे। और इस बार भी तीन तरह के पौधों पर तंतु पहचानने की कोशिश करेंगे।

मटर के इस चित्र में तंतु दिखाई दे रहे हैं। वे किस अंग का रूपांतरण हैं यह पता करने से पहले आपको मटर के पौधे पर पत्ती पहचाननी होगी। शुरूआत में ही हमने पढ़ा कि पत्ती के कक्ष में कक्ष-कलिका ज़रूर होती है। पर इस चित्र

मटर के तंतु
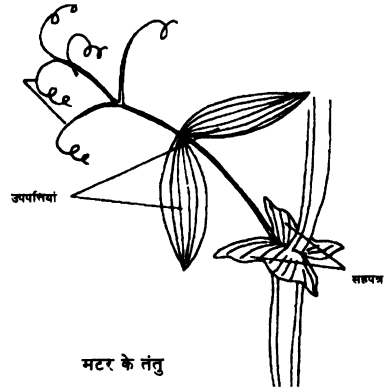
में तो मटर की छोटी-छोटी गोल पत्तियों के डंठल के पास कक्ष-कलिका नहीं दिखाई दे रही।

चित्र को एक बार फिर गौर से देखिए। एक कक्ष-कलिका तो है पर वो तो कहीं और ही उग निकली है। इसका अर्थ यह हुआ कि उस कक्ष-कलिका के बाद की पूरी रचना एक पत्ती है और जिसे हम पत्तियां समझ बैठे थे वे तो उप-पत्तियां हैं। इस तरह की पत्ती को संयुक्त पत्ती भी कहते हैं। फिर से देखें तो समझ में आता है कि मटर में पत्ती के सिरे पर कुछ उप-पत्तियां तंतुओं में बदल गई हैं।

स्माईलेक्स में पहचानना एकदम आसान है क्योंकि तंतु पत्ती के नीचे ठीक उसी जगह से निकलते हैं जहां सहपत्र पाए जाते हैं। अतः उन्हें सहपत्रों का रूपान्तरण कहना अनुचित नहीं होगा और टिंडोरी (कुंदरू) में तंतु पत्ती के कक्ष में से निकलते हैं जहां पर आमतौर पर कक्ष कलिका पाई जाती है, इसलिए उन्हें कक्ष-कलिका का रूपान्तरण कहा जाता है।

सबसे अच्छा तरीका

इस लेख में हमने यह समझने की कोशिश की कि पौधों में किसी रचना को अन्य अंग का रूपांतरण मानने के क्या आधार होते हैं। इन्हें समझने के लिए एक-दो उदाहरणों की विस्तार में चर्चा लाज़िमी थी। अन्य रूपांतरण पहचानने का तरीका भी यही है। आमतौर पर पेड़-पौधों की बाहरी रचनाएं ध्यान से देखने से ही समझ में आ जाता है। नागफनी की बड़ी-बड़ी चपटी रचनाएं तना हैं या पत्तियां, पता करने के लिए
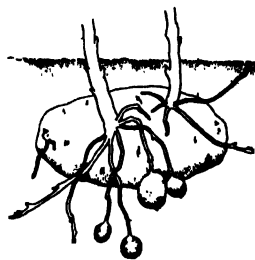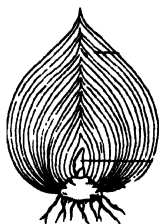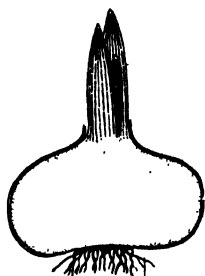
आपको अग्र-कलिका और कक्ष-कलिका ढूंढनी होंगी। आलू जड़ है या तना, यह जानने के लिए उस पर पाई जाने वाली आंखों-गठानों को गौर से देखना होगा। ऐसे ही यह पहचानने के लिए कि प्याज़ में जड़ कौन-सी है, तना कहां पर है और पत्तियां किन्हें कहेंगे, प्याज़ को उगाकर देखना पड़ेगा कि ऊपर उगने वाले हरे पत्ते किस हिस्से से जुड़े हैं, अग्र-कलिका कहां पर है, फूल कहां से निकल रहे हैं, ...।

मीनूभाई परबिया – गुजरात में सूरत विश्व-विद्यालय के जीव विज्ञान विभाग में कार्यरत।

ज़रूरी नहीं . . . .

ज़रूरी नहीं होता कि गठान से सिर्फ एक पत्ती ही निकले – कई पेड़ों में एक ही गठान से ज्यादा पत्तियां भी निकलती हैं। ऐसी स्थिति में भोजन-पानी की नलिकाएं तने में से कैसे अलग होती होंगी, इस चित्र में दोनों तरह के उदाहरण दिए गए हैं।

पहले में नीलगिरी के पेड़ पर तने में से निकलती हुई पत्ती की तरफ मुड़ती हुई नलिकाएं हैं।

और दूसरे पौधे में गठान से एक दूसरे के उल्टी तरफ लगी हुई दो-दो पत्तियां निकलती हैं। इसलिए नलिकाओं के भी दो गुच्छे मुख्य रिंग से अलग होते दिखाई देते हैं।
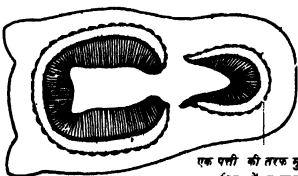
प्रयोगशाला में

कैसे जांचें?

पानी कब सबसे भारी

4^0 से. तापमान पर पानी सबसे अधिक भारी होता है। बर्फ बनने की प्रक्रिया इसके बाद शुरू होती है। कुछ समय पहले तक प्रयोगशालाओं में पानी के इस गुण को जांचने वाला एक सरल-सा उपकरण हुआ करता था, होप उपकरण। इसके बारे में बता रहे हैं मंगल सिंह रघुवंशी।

पिछले अंक में *कब जमेगी झील* शीर्षक से प्रकाशित लेख में पानी के इस विशेष गुण पर चर्चा की गई थी कि 4^0 से. पर पानी का आपेक्षिक घनत्व सबसे अधिक होता है। यह गुण विशेष इसलिए क्योंकि अन्य द्रवों में यह गुण नहीं पाया जाता। लेकिन इस गुण का क्या अर्थ निकलता है? क्या कोई तरीका है जिससे इस गुण को जांचा जा सके।

भौतिक शास्त्र की पुरानी किताबों में पानी के इस विलक्षण प्रसार गुण को जांचने का एक प्रयोग उपलब्ध है। इसके लिए 'होप उपकरण' से प्रयोग किया जाता था। पुरानी प्रयोगशालाओं में कोनों की धूल झाड़ने पर अभी भी शायद कहीं ये उपकरण मिल सकता है।

'होप उपकरण' में तांबे का लम्बा खोखला बेलन होता है जिसके ऊपर एवं नीचे के भागों में कॉर्क द्वारा दो तापमापी लगाने के लिए दो छेद बने होते हैं। इसके बीच वाले हिस्से में लंबे बेलन को घेरे हुए एक बड़ा-सा खोखला कटोरा जुड़ा होता है जिसके निचले भाग में एक नली लगी रहती है।

उपकरण के दोनों छेदों में एक छेद वाले कार्क की सहायता से तापमापी लगाकर लंबे बेलन में साफ पानी भर देते हैं। बीच वाले बड़े कटोरे में हिम मिश्रण भर देते हैं। हिम मिश्रण यानी बर्फ और नमक का मिश्रण। इस मिश्रण का ताप 0^0 से. से कम होता है। इसे पानी को बर्फ बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। आइसक्रीम या कुलफी
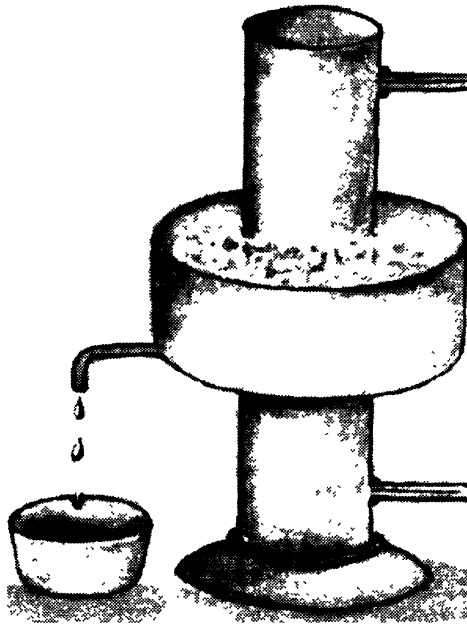
होप उपकरण: 4^0 से. पर पानी का आपेक्षिक घनत्व सबसे ज़्यादा होता है यानी वह सबसे भारी होता है, यह इस उपकरण की सहायता से समझा जा सकता है। बीच के कटोरे जैसे बर्तन में भरे बर्फ-नमक के मिश्रण के संपर्क में आने वाली पानी की सतह ठंडी होने लगती है। ठंडी होने पर अन्य सतहों से भारी हो जाने के कारण यह नीचे की ओर बैठने लगती है। नीचे जाने की प्रक्रिया में यह संपर्क में आने वाली सतहों को तो ठंडा करती ही जाती है, साथ ही नीचे का पानी भी ऊपर आने लगता है और मिश्रण के संपर्क में आकर ठंडे होने की प्रक्रिया उसके साथ भी शुरू हो जाती है। इस तरह नीचे की ओर ठंडा पानी जाने के कारण नीचे के तापमापी का ताप गिरने लगता है। और तब तक गिरता रहता है जब तक कि पारा 4^0 से. पर नहीं आ जाता। अंदर के पानी का तापमान 4^0 से. से और कम होने पर ऊपर वाले तापमापी का तापमान गिरने लगता है।

वाले इसका उपयोग खूब करते हैं।

हिम मिश्रण से घिरे लम्बे बेलन के बीच वाले हिस्से का पानी ठंडा होने लगता है। शुरुआत में दोनों तापमापी समान ताप (पानी के ताप के बराबर) दिखलाते हैं। कुछ समय बाद नीचे वाले तापमापी का पारा गिरने लगता है यानी कि नीचे वाले तापमापी का तापमान कम होने लगता है। यह ताप कम होते-होते 4^0 से. तक गिर जाता है। इसके बाद नीचे वाले तापमापी का पारा गिरना बंद हो जाता है मतलब कि उसका तापमान स्थिर हो जाता है।

ऐसा होने के कुछ समय पश्चात ऊपर वाले तापमापी का पारा भी गिरने लगता है। एक समय ऐसा आता है जब इस ऊपर वाले तापमापी का ताप भी 4^0 से. तक गिर जाता है।

इसके बाद और ठंडा करने पर ऊपर वाले तापमापी का ताप 0^0से. तक गिर

14°
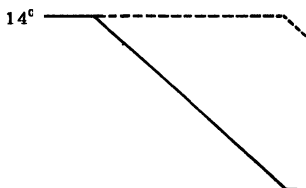
ऊपर का तापमापी
नीचे का तापमापी

होप उपकरण से प्रयोग करने पर कुछ इस तरह का ग्राफ बनेगा।

जाता है, परन्तु नीचे वाले तापमापी का ताप 4^0 से. से कम नहीं होता।

इस समय यदि एक तापमापी लंबे बेलन में ऊपर से नीचे ले जाया जाए तो पता चलता है कि ऊपरी भाग में पानी का तापमान 0^0 से. है जो गहराई के साथ क्रमशः बढ़ते-बढ़ते 4^0 से. तक पहुंच जाता है। उससे भी और नीचे जाने पर पानी का तापमान 4^0 से. पर ही रहता है, चाहे आप बेलन की पेंदी तक पहुंच जाएं।

यदि इस उपकरण को और ठंडा किया जाए तो लम्बे बेलन में पानी की सतह पर बर्फ जमने लगती है, परन्तु नीचे वाले तापमापी का ताप 4^0 से. पर ही रहता है।

ताप परिवर्तन की इन क्रियाओं का ग्राफ बनाएं तो कुछ ऐसा बनता है।

अब देखें कि इन अवलोकनों का अर्थ क्या निकलता है, उनसे पानी पर ताप के असर के बारे में हमें क्या पता चलता है:

1. बेलन के बीच वाले हिस्से में ठंडा होने वाला पानी घनत्व बढ़ने के कारण नीचे जाता है और नीचे का अधिक ताप वाला हल्का पानी (कम घनत्व वाला) ऊपर आने लगता है। यह क्रिया उस समय तक चलती है जब तक नीचे वाले पानी का ताप 4^0 से. तक न गिर जाए।
2. 4^0 से. से कम ताप का पानी 4^0 से. वाले पानी की तुलना में कम घनत्व का रहता है, इसीलिए और ठंडा करने पर पानी ऊपर की तरफ जाता है और ऊपरी भाग का ताप 0^0 से. तक गिर जाता है।
3. 4^0 से. पर पानी का घनत्व अधिकतम होता है।

मंगत सिंह रघुवंशी - होशंगाबाद ज़िले के सिवनी मालवा कस्बे की शास. उ. मा. विद्यालय में व्याख्याता।

'कब जमेगी झील' - संदर्भ के पांचवें अंक में प्रकाशित। लेखक — अजय शर्मा।

हज़ारों साल पहले जो लोग थे, वे कब के मर चुके। उनकी बनी अधिकतर चीज़ें भी अब नहीं रहीं। तब आज हम कैसे जान सकते हैं कि वे लोग कैसे रहते थे, वे क्या करते थे, क्या सोचते थे? इतिहास जानने के इस पहलू के बारे में समझ बनाने के लिए एक अभ्यास।

पुराने समय के बारे में हम कैसे जानते हैं

● कुमकुम राय

पुराने समय के लोगों के कई तरह के अवशेष हमें बचे मिलते हैं – उनके बर्तन, इस्तेमाल में आने वाला सामान, शरीर की हड्डियां आदि। यही नहीं हज़ारों साल पहले जो चीज़ें लोगों ने लिखीं थीं उनमें से भी कुछ आज तक बच गई हैं। वे हमें पढ़ने को मिलती हैं। उनकी भाषा आज से अलग है। उनकी लिखाई भी अलग है। हर कोई उन्हें नहीं पढ़ सकता। जिन लोगों ने पुरानी भाषा और लिखाई को सीखा है वे ही पढ़ कर बताते हैं कि पुराने लोग क्या लिख गए हैं।

यह तो अच्छा हुआ कि उन लोगों ने कुछ लिखा जो हम आज पढ़ सकते हैं। नहीं तो हमें उनके बारे में कैसे पता चलता? पर इस में एक दिक्कत भी है। वे लोग जो लिख कर छोड़ गए, उस पर हम कितना भरोसा करें? उदाहरण के लिए राजा अशोक के बारे में हम उसके अभिलेखों को पढ़कर पता करते हैं। पर जो बातें अभिलेख पढ़कर पता चलती हैं, क्या राजा अशोक के समय में बस सिर्फ वैसी ही बातें होती थीं? शायद ऐसी भी कई बातें होती हों जिनका अभिलेखों में ज़िक्र ही नहीं है? इससे क्या परेशानी होती है? एक उदाहरण लेकर देखते हैं।

अपने-अपने बयान

मान लो तुम हर रोज़ रात को एक रिपोर्ट लिखते हो। उसमें तुम दर्ज़ करते हो कि तुमने दिन भर में क्या किया, दिन भर में क्या हुआ। तुम रोज़ यह रिपोर्ट लिखते हो। मान लो तुम्हारी मां भी ऐसी एक रिपोर्ट लिखती हैं, कि दिन भर उन्होंने क्या किया, दिन भर में क्या-क्या हुआ। और तुम्हारे भाई-बहन, पिताजी भी ऐसी रिपोर्ट लिखते हैं।

क्या तुम्हारी और तुम्हारी मां की दिन भर की रिपोर्ट में एक जैसी बातें होंगी?

अगर तुम वास्तव में घर में सब को ऐसी रिपोर्ट लिखने के लिए मनवा सको, तो मज़ेदार फर्क दिखाई देंगे।

तुम शायद देखोगे कि मां ने लिखा है – "ललिता को स्कूल भेजा।" शायद तुम्हारे बारे में इससे ज़्यादा और कुछ नहीं होगा। पर तुम्हारी रिपोर्ट में तुम्हारी कक्षा, खेल, दोस्तों के बारे में कई बातें लिखी होंगी। दूसरी तरफ अपनी मां के बारे में बस यही लिखा हो सकता है – "मां ने आज खाने में भटे की सब्ज़ी बनाई जो मुझे बिलकुल पसंद नहीं।" इससे यह नहीं पता चलेगा कि तुम्हारी मां ने दिन भर में क्या किया, उनका दिन कैसे बीता।

कोई तुम्हारी रपट पढ़े तो शायद यही जान सके कि तुम्हारी मां ने भटे की सब्ज़ी बनाई। बस। यह भी हो सकता है कि एक दिन तुम्हारी मां घर का सारा चूल्हा-चौका कर के थक गई हों और उस रात वे रिपोर्ट नहीं लिख पाईं। उससे किसी को ऐसा लग सकता है कि उस दिन उन्होंने कुछ किया ही नहीं। जबकि उन्होंने इतना ज़्यादा काम किया था कि थकान के मारे रिपोर्ट ही नहीं लिख पाईं।

क्या तुम्हें अब कोई दिक्कत समझ में आ रही है? तुम्हारे परिवार के बारे में मुझे जानना हो तो तुम्हारी रिपोर्ट पढ़कर मुझे कुछ बातें पता चलेंगी जो तुम्हारी मां की रिपोर्ट से पता नहीं चलीं। यह फर्क इसलिए आएगा क्योंकि रिपोर्ट अलग-अलग लोगों ने लिखी। एक तुमने, एक तुम्हारी मां ने।

ऐसी ही बात इतिहास के हर स्रोत के साथ होती है। चारों वेद, उपनिषद, सुत्त-पिटक, विनय-पिटक, अशोक के अभिलेख जैसी सब लिखी हुई चीज़ों के साथ यह सीमा है। हमें हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि ये चीज़ें किसने रचीं? जिसने भी उन्हें तैयार किया हो उसी के नज़रिए से लिखी गई बातें हमें मिलेंगी। उस समय के दूसरे लोगों की बातों के बारे में हमें इनसे पता नहीं चलेगा।

जैसे वेदों को ज़्यादातर ब्राह्मणों व पुजारियों ने रचा था। पर आर्यों के समय में और भी तरह के लोग थे – राजा, राजन्य, पशु पालने वाले, रथकार, औरतें, बच्चे। ब्राह्मणों व पुजारियों ने इन लोगों के बारे में जो कुछ कहा, वही हमें पता चलता है। और कुछ नहीं। अगर हम इन लोगों के बारे में वेदों से पता करने की कोशिश करेंगे तो हमें वैसी ही दिक्कत
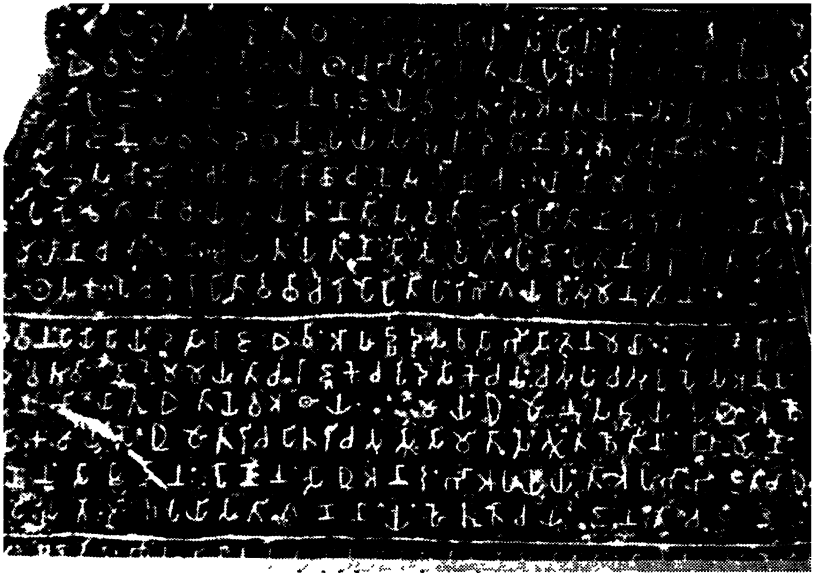
गिरनार (गुजरात) से मिला राजा अशोक का तीसरा शिलालेख। इसमें वह कहता है, " . . . . . मैंने अपने पूरे राज्य में अपने युक्त, राजुक और प्रादेशिकों को आज्ञा दी है कि वे हर पांच साल में दौरा करेंगे, जिस दौरान वे अन्य कामों के अलावा लोगों में धम्म का संदेश पहुंचाएंगे। . . . . ."

अब कौन बता सकता है कि अशोक के अधिकारी जब गांवों में पहुंचते थे तो उनके क्रियाकलाप वास्तव में क्या होते थे? अभिलेख तो सिर्फ राजा की आज्ञा का बयान है!

होगी जैसी तुम्हारी मां की दिनचर्या के बारे में तुम्हारे द्वारा लिखी गई रिपोर्ट से पता करने में होगी। तुम सोच सकते हो कि हमें तुम्हारी मां के बारे में कितना कम मालूम पड़ेगा। यह कमी तभी पूरी होगी जब तुम्हारी मां की लिखी हुई रिपोर्ट भी हम पढ़ सकें।

ढोल अपना-अपना

इस तरह लिखी हुई चीज़ों को पढ़कर कुछ पता करने में एक और दिक्कत आती है।

मान लो, मेरे घर में चोर घुस आए और पकड़े गए। जब मैं तुम्हें यह बताऊंगी तो अनजाने में ही सारी बात ऐसे बताऊंगी जिससे लगे कि अगर मैं चौकन्नी नहीं होती तो चोर पकड़े ही न जाते। पर इसमें मज़ेदार बात तो यह है कि अगर तुम मेरे भाई से इस बारे में पूछो तो वो चोरों के पकड़े जाने का किस्सा इस तरह से बयान करेगा जिससे सबको यही लगेगा कि उसी की बहादुरी और होशियारी ने हमें चोरों से बचाया था।

यही चक्कर पुराने समय में लिखी
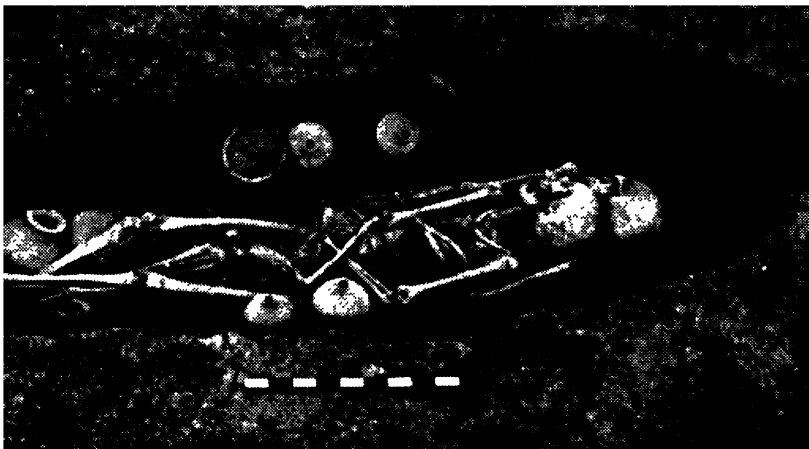
क्या बचा रह पाया: हांड़ियां व पकाए गए मिट्टी के बर्तन या उनके टुकड़े पुरानात्विक खुदाई में बड़ी संख्या में मिलते हैं, क्योंकि ये चीज़ें हज़ारों साल बची रहती हैं। चित्र में दिख रहा है एक कब्र का दृश्य जो लगभग तीन हज़ार साल पुरानी है और महाराष्ट्र के एक गांव इनामगांव में मिली। जिसमें एक महिला और एक पुरुष का शव, एक साथ कई बर्तनों के साथ, दफनाया गया था।

क्या आप सोच सकते हैं कि इस कब्र में और क्या-क्या चीज़ें रही होंगी जो अब नष्ट हो चुकी हैं?

गई चीज़ों के साथ भी होता है। तुम जानते हो कि वेदों को, पिटकों को धर्म के काम में लगे लोगों ने लिखा था – ब्राह्मणों ने, बौद्ध-भिक्षुओं ने। इन लोगों के लिए धार्मिक काम और धर्म के विचार ही सबसे महत्वपूर्ण चीज़ें थीं। तो उन्होंने इन्हीं चीज़ों के बारे में ज़्यादा लिखा। अब जब हम इनकी लिखी चीज़ें पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो आर्य लोग अपना सारा समय देवताओं की पूजा करने में, यज्ञ करने व बलि चढ़ाने में ही बिता देते थे। पर अगर हम एक मिनिट रुक कर सोचें तो यह सवाल उठता है कि 'अगर आर्य लोग हरदम पूजा कर रहे थे, तो उन्हें भोजन कहां से मिलता था? बलि व यज्ञ के लिए जो सामान चाहिए था वो सब उन्हें कहां से मिलता था? ....' (इस तरह के और कौन से सवाल हमारे मन में उठ सकते हैं?)

अब वेदों में आर्यों के रोज़ाना के कामकाज, भोजन के इन्तज़ाम आदि बातों के बारे में साफ-साफ कुछ भी नहीं लिखा। पर जो कुछ लिखा है उसी से हम अंदाज़ा लगा सकते हैं कि ये अन्य कामकाज कैसे होते होंगे। जैसे मैं जब तुम्हें चोर पकड़ने वाली कहानी सुना रही हूं और बीच में कहीं यह कह दूं – "इस बीच मेरी मां पड़ोसियों को बुला लाई।" तो तुम यह अन्दाज़ लगा सकते हो कि चोर पकड़ने में सिर्फ मेरा हाथ नहीं था – मेरी मां व

पड़ोसियों ने भी मदद की! और शायद उन्हीं लोगों ने चोर पकड़ा – मैं तो सिर्फ शेखी बघार रही थी!

इस तरह अगर हमें पता हो कि कोई भी चीज़ किसने लिखी है, तो हम कई सवालों के जवाब उस चीज़ को ध्यान से पढ़कर ढूंढ सकते हैं।

जो अज्ञात है और रहेगा

क्या तुम सोच सकते हो कि आर्य जन के साधारण लोग अगर कुछ रचना करते, तो उसमें क्या कहते? हमें उनकी रचनाएं पढ़कर आर्यों के बारे में कौन-कौन-सी बातें पता चलतीं?

'दस्यु' लोगों द्वारा लिखा हुआ अगर कुछ मिलता तो उसमें क्या बातें होतीं?

अशोक के द्वारा खुदवाए गए अभिलेख हमें मिलते हैं। कलिंग के साधारण लोगों द्वारा लिखा कुछ मिलता तो किस तरह की बातें पता चलतीं? क्या वे लोग भी वही चीज़ें लिखते जो अशोक ने लिखवाई थीं?

पुरातत्व से . . . .

पुराने समय के बारे में हमें सिर्फ लिखी हुई चीज़ों से पता नहीं चलता।

उस समय के सामान में से कुछ चीज़ें हज़ारों साल बाद भी बची रहती हैं। उन्हें हम आज भी देख सकते हैं और उन के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालने की कोशिश कर सकते हैं।

तुमने इतिहास के पाठों में ऐसे कौन-कौन से निशानों या अवशेषों के बारे में जाना है?

पुराने समय में लोगों ने जो सामान बनाया था, क्या वो सब वैसा का वैसा बच जाता है?

एक प्रयोग कर के देखो।

ज़मीन में चार छोटे गढ्ढे बनाओ, करीब 6 इंच गहरे। इनमें से एक में 50 पैसे का सिक्का दबाओ, दूसरे में लकड़ी का एक छोटा गुटका, तीसरे में कपड़े का टुकड़ा, चौथे में मिट्टी के घड़े का कोई टूटा हुआ छोटा-सा हिस्सा। गढ्ढों को मिट्टी से ढक दो। और हर गढ्ढे के चारों तरफ छोटे कंकड़ों का घेरा बना दो जिससे तुम्हें ध्यान रहे कि गढ्ढे कहां पर हैं। गढ्ढों पर हर रोज़ पानी डालो। ऐसा 14 दिन तक लगातार करो। 15वें दिन गढ्ढे खोद कर देखो कि उनमें क्या मिलता है।

तुम एक और काम भी कर सकते हो।

अपने घर के आसपास या जहां भी कचरे का ढेर हो, वहां देखो कि क्या-क्या पड़ा हुआ है। उसमें से ऐसी चीज़ें छांटो जो 100 साल बाद भी बची रहेंगी। ऐसी बची हुई चीज़ों से भी हम बहुत कुछ पता कर सकते हैं। पर सिर्फ इन अवशेषों के सहारे उस ज़माने के बारे में सब बातें पता नहीं चलतीं।

शिकारी मनुष्य के जो औज़ार, हड्डियां व चित्र मिलते हैं उनके आधार पर हम इनमें से क्या यह पता लगा सकते हैं

1. वे किन जानवरों का मांस खाते थे?

2. वे क्या भाषा बोलते थे?

3. वे एक दूसरे को नाम से बुलाते थे कि नहीं?

आदिमानव के अवशेषों में हड्डियां व पत्थर के औज़ार प्रमुखता से पाए जाते हैं। अफ्रीका महाद्वीप में नैरोबी के पास एक स्थान पर मिले लाखों साल पुराने आदिमानव के जीवन के अवशेष — पत्थर के औज़ार और बबून बंदर की हड्डियां।

4. वे कैसे दिखते थे?

5. वे शिकार कैसे करते थे?

इसी तरह वेदों को पढ़कर हमें इनमें से क्या पता चल सकता है कि:

1. आर्यों के घरों में कौन-से बर्तन हुआ करते थे?

2. वे किस चीज़ पर सोते थे?

3. वे एक जगह कितने दिन रहते थे?

4. वे घर कैसे बनाते थे?

5. वे किस चीज़ के लिए लड़ते थे?

6. वे क्या खाते-पीते थे?

यानी, इतिहास की हर स्रोत-सामग्री की अपनी-अपनी उपयोगिता है और अपनी-अपनी सीमाएं भी। बीते समय के बारे में कोई भी जब कुछ बताए तो हमें दो बातों की जांच करने की कोशिश ज़रूर करनी चाहिए — कि बताने वाले ने किन स्रोतों को आधार बनाया है? और क्या उसने अपने स्रोत की सीमाओं को समझा है?

अब बताओ पूरी-पूरी सच्चाई का दावा करना आसान है क्या? और 'पूरा-पूरा सच' कुछ हो भी सकता है क्या?

कुमकुम रॉय - सत्यवती कॉलेज, दिल्ली।

अपने-अपने बयान: मोहम्मद तुगलक के ज़माने से

*सुल्तान मोहम्मद तुगलक ने सन् 1328 में यह आदेश दिया कि राजधानी दिल्ली के निवासी दक्षिण में दौलताबाद जा कर बसें। इस मशहूर घटना का ज़िक्र दो समकालीन इतिहासकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं में किया। एक थे **ज़ियाउद्दीन बरनी** जो मोहम्मद तुगलक के दरबारी थे। उन्होंने मोहम्मद के भतीजे सुल्तान फिरूज़ के समय में 'तारीखे फिरूज़ शाही' की रचना की जिसमें मोहम्मद तुगलक के ज़माने की बातें भी दर्ज़ कीं। दूसरे इतिहासकार थे **एसामी** जो मोहम्मद के समय में अपने दादा के साथ दिल्ली से दौलताबाद गए थे। कई वर्षों बाद दौलताबाद तुगलक के शासन से स्वतंत्र हो गया और बाहमनी की स्वतंत्र सल्तनत का हिस्सा बना। एसामी इस सल्तनत में रहे और उन्होंने 'फुतुह उस सलातिन' की रचना की। इस रचना में उन्होंने भी मोहम्मद तुगलक के ज़माने की बातों का बयान किया है। बरनी और एसामी के बयान क्या बताते हैं हमें?*

ज़ियाउद्दीन बरनी लिखते हैं –

एक योजना सुल्तान के दिमाग में आई कि दौलताबाद को राजधानी बनाया जाए। यह इसलिए क्योंकि दौलताबाद उसके साम्राज्य के मध्य में है। देहली, गुजरात, लखनऊटी, तिलंग, माबर, द्वारसमुद्र तथा कम्पिला, इस शहर से लगभग समान दूरी पर स्थित हैं। इस विषय में उसने किसी से परामर्श नहीं किया। उसने आदेश दिया कि उसकी अपनी मां और राज्य के सारे बड़े अधिकारी व सेनापति, अपने सहायक व विश्वासपात्रों के साथ दौलताबाद की ओर चलें। दरबार के हाथी, घोड़े, खज़ाना और बहूमूल्य वस्तुएं दौलताबाद भेज दी जाएं। इसके पश्चात सूफी संत व आलिमों (इस्लामी ग्रंथों के अध्ययन करने वाले) तथा देहली के प्रतिष्ठित व प्रसिद्ध लोग दौलताबाद बुलाए गए। जो लोग दौलताबाद गए उन्हें सुल्तान ने खूब सारा धन इनाम में दिया।

एक साल बाद सुल्तान देहली लौटा। उसने आदेश दिया कि देहली तथा आस-पास के कस्बों के निवासियों को काफिलों में दौलताबाद भेजा जाए। देहली वालों के घर उनसे मोल ले लिए जाएं। इन घरों की कीमत खज़ाने से दौलताबाद जाने वालों को दे दी जाए। ताकि वे वहां जाकर अपने लिए घर बनवा लें।

शाही आदेशानुसार देहली तथा आसपास के निवासी दौलताबाद की ओर भेज दिए गए। देहली शहर इस प्रकार खाली हो गया। कुछ दिन तक देहली के सारे दरवाज़े बंद रहे, शहर में कुत्ते बिल्ली तक न रह पाए।

देहली के निवासी जो वर्षों से वहां रहते आ रहे थे, लंबी यात्रा के कष्ट से रास्ते में ही मर गए। बहुत से लोग, जो कि दौलताबाद पहुंचे अपनी मातृभूमि से बिछड़ने का दुख सहन नहीं कर सके। वे वापस होने की इच्छा में ही मर गए। यद्यपि सुल्तान ने

देहली से जाने वाली प्रजा को अत्यधिक इनाम दिए, वह परदेस व कष्टों को सहन न कर सकी।

इसके बाद दूसरे प्रदेशों से आलिमों, सूफियों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को लाकर देहली में बसाया। मगर इस प्रकार लोगों को लाने से देहली आबाद न हो सकी।

लगभग पांच, छह साल बाद सुल्तान ने आदेश दिया कि जो भी दिल्ली लौटना चाहता है वह लौट सकता है। कुछ लोग लौट गए मगर बहुत से परिवार दौलताबाद में ही बस गए।"

इसी घटना का ज़िक्र एसामी ने अपनी किताब 'फुतुह उस सालतिन' में कुछ इस तरह किया है –

"सुल्तान को देहली वालों पर संदेह था और वह उनके लिए मन में विष छिपाए रहता था। उसने गुप्त रूप से एक कुत्सित योजना बनाई कि एक महीने में देहली का विनाश कर दिया जाए। उसने सूचना कराई कि – "जो कोई सुल्तान का हितैषी हो वो दौलताबाद की ओर प्रस्थान करे। जो कोई इस आज्ञा का पालन करेगा उसे अत्यधिक संपत्ति मिलेगी, जो कोई इसका पालन न करेगा उसका सिर काट डाला जाएगा।"

उसने आदेश दिया कि देहली में आग लगा दी जाए और सभी लोगों को नगर से बाहर निकाल दिया जाए। परदेवाली स्त्रियों तथा एकांतवासी सूफियों को उनके घरों से बाल पकड़कर निकाला गया। इस प्रकार वे लोग देहली से निकले।

मेरे दादा भी उसी शहर में रहते थे। उनकी उम्र 90 वर्ष थी और वे एकांतवासी संत थे। वे कभी अपने घर से बाहर नहीं निकलते थे। वे पहले पड़ाव में ही मर गए। उन्हें वहीं दफन कर दिया गया।

सभी बूढ़े, युवक, स्त्री तथा बालक यात्रा करने के लिए विवश थे। बहुत से बालक दूध बिना मर गए। अनेकों लोगों ने प्यास के कारण प्राण त्याग दिए। उस काफिले में से अत्यधिक कठिनाई सहन करके केवल दसवां भाग ही दौलताबाद पहुंच सका। सुल्तान ने इस तरह एक बसा हुआ शहर नष्ट कर डाला।

जब देहली में कोई न रह गया तो सारे द्वार बंद कर दिए गए। सुना जाता है कि कुछ समय बाद उस नीच और अत्याचारी बादशाह ने आसपास के गांवों से लोगों को बुलाकर देहली को बसवाया। तोतों और बुलबुलों को बाग से निकालकर कौओं को बसा दिया।

न जाने सुल्तान को किस प्रकार उन निर्दोष लोगों पर संदेह उत्पन्न हो गया कि उसने उनके पूर्वजों की नींव उखाड़ डाली और आज तक उनकी संतानों के विनाश में तल्लीन है।"

(मूल फारसी ग्रंथों के हिंदी अनुवाद से उद्धृत;
अनुवादक – एस.ए.ए. रिज़वी, तुगलक कालीन भारत, भाग-1)

ब्राज़ील में फाइनमेन

● अरविंद गुप्ते

कमरे का दरवाज़ा उखाड़ कर छुपा देना।
तिज़ोरियों के ताले तोड़ना।
शराब खानों में जाकर खूब शराब पीना, मौजमस्ती करना।
नशे में लोगों से लड़ना।
सड़क पर ड्रम बजाना।
माफ कीजिएगा लेकिन हम किसी ऐसे-वैसे व्यक्ति के बारे में बताने नहीं जा रहे। बल्कि ये तो विख्यात भौतिकशास्त्री रिचर्ड पी. फाइनमेन की ज़िंदगी के कुछ तथ्य हैं।

ये तथ्य खुद फाइनमेन ने अपनी जीवनी में इकट्ठे किए हैं। जो 'फाइनमेन, आप मज़ाक कर रहे हैं?' शीर्षक से प्रकाशित है। वैसे आप को लग सकता है कि एक इतना बड़ा वैज्ञानिक और ऐसी ज़िंदगी, कहीं ये मज़ाक तो नहीं है। लेकिन नहीं, ये सब बातें सही हैं। दरअसल फाइनमेन ऐसे वैज्ञानिक कतई नहीं थे जो दिन रात किताबों और प्रयोगशालाओं में घुसे रहते हों। उन्हें ज़िंदगी का मज़ा लेने में मज़ा आता था। उनका मानना था कि दुनिया में होने वाली हर बात के लिए वे ज़िम्मेदार नहीं हैं, इसलिए वो अपने तरीके से मस्ती मे जीते थे। फाइनमेन को भौतिकी के लिए नोबेल पुरस्कार मिला। शोध करने के साथ-साथ फाइनमेन में क्लास में जाकर विद्यार्थियों को पढ़ाने की ज़बर्दस्त ललक थी। यह दिखाई देता है प्रसिद्ध 'फाइनमेन लेक्चर्स' में, जिसे तैयार करने में उन्होंने लगभग डेढ़ साल बिताया। इस दौर में उन्होंने कोई खास शोध कार्य नहीं किया, बस वे लेक्चर तैयार करते और विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। इन्हीं लेक्चर्स को इकट्ठा कर 'फाइनमेन लेक्चर्स' नाम से जो किताब तैयार हुई, वो पूरी दुनिया में भौतिकी के अध्ययन के लिए आज भी बेजोड़ मानी जाती है।

इस जीवनी का जो हिस्सा हम दे रहे हैं वो उनकी ब्राज़ील यात्रा का वृतांत है। जो उन्होंने लगभग 45 साल पहले की थी। उन्हें ब्राज़ील भौतिक शास्त्र पढ़ाने के लिए बुलाया गया था। वहां उन्होंने पढ़ाया, साथ ही उस देश की विज्ञान शिक्षा पद्धति का विश्लेषण भी किया। इस वृतांत को पढ़िए और सोचिए कि तब के ब्राज़ील में विज्ञान अध्ययन स्थिति और हमारे देश में आज शिक्षा की स्थिति में क्या फर्क है और क्या समानता है?

ब्राज़ील में जिस प्रकार विज्ञान पढ़ाया जाता है उसे देखकर फाइनमेन काफी अचंभित हुए। अपने इस अनुभव के बारे में उन्होंने लिखा है कि "ब्राज़ील के मेधावी माने जाने वाले छात्रों को विज्ञान इस प्रकार रटा हुआ होता है कि वे किताबों के पृष्ठ बिना किताब खोले सुना सकते हैं। उन्हें वैज्ञानिक शब्दावली, परिभाषाएं आदि सब कुछ कंठस्थ होता है, किंतु इस सबके बावजूद उन्हें विज्ञान में कुछ नहीं आता; वे बिल्कुल शून्य होते हैं। न तो उनमें अवलोकन की क्षमता होती है न ही अपने आसपास

बिखरे विज्ञान के सिद्धांतों की समझ। सारी जानकारी रटी होने के बावजूद जब इन सिद्धांतों को लागू करने की बात आती है तो वे साधारण-से-साधारण प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाते।" इस अनुभव से जुड़े कुछ रोचक उदाहरण भी फाइनमेन ने प्रस्तुत किए हैं।

एक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में पढ़ाते हुए फाइनमेन ने पाया कि छात्रों को प्रकाश के ध्रुवण (Polarisation) की परिभाषा, उसका कोण, दिशा तथा ध्रुवण और माध्यम के बीच संबंध..... सब कुछ कंठस्थ था। उन्हें पोलेरॉइड के दो टुकड़े देकर प्रयोग करवाने के बाद जब फाइनमेन ने उनसे पूछा कि बाहर लहराते हुए समुद्र का प्रकाश ध्रुवीकृत है क्या – तो पूरी क्लास में एक गहन चुप्पी छा गई। उन्होंने विद्यार्थियों को कई इशारे और संकेत भी दिए, फिर भी कोई भी समझ नहीं पा रहा था कि वे खुद जिस माध्यम की बात कर रहे थे वो समुद्र का पानी हो सकता है, कि 'प्रकाश की दिशा' का मतलब उस दिशा से हो सकता है जिस दिशा में आप किसी वस्तु को देख रहे हैं।

ब्रूस्टर कोण के बारे में पूछते ही वे तुरंत परिभाषा उगल देते थे क्योंकि उनके दिमागी कम्प्यूटर में वो शब्द था पर 'पानी को देखो, समुद्र को देखो ... ' कहने पर मूक चुप्पी ही मिलती। उन्हें कुल मिलाकर इतना ही करना था कि एक पोलेरॉइड में से समुद्र के पानी को देखते और फिर पोलेरॉइड को घुमा कर देखते कि क्या किसी खास दिशा में अंधेरा-सा छा जाता है। जबकि दो पोलेरॉइड के साथ उन्होंने इस प्रयोग को पहले इसी तरह किया हुआ था।

फाइनमेन एक बार एक इंजीनियरिंग कॉलेज की भौतिक शास्त्र की कक्षा में जाकर बैठ गए। प्राध्यापक महोदय

व्याख्यान देते जा रहे थे और छात्र उन शब्दों को कॉपियों में उतारते जा रहे थे। भाषण का एक अंश कुछ इस प्रकार था 'अगर दो पिंडों पर समान बलघूर्ण (Torque) लगाने पर समान त्वरण उत्पन्न होता है तो दोनों पिंडों को समतुल्य माना जाएगा।*' फाइनमेन को आश्चर्य हुआ कि पूरे व्याख्यान के दौरान बलघूर्ण समझाने के लिए एक भी उदाहरण नहीं दिया गया, जबकि रोज़मर्रा के जीवन में इसके कई सरल उदाहरण मौजूद हैं। जैसे कि किसी दरवाज़े के बाहर बीचोंबीच कोई भारी वस्तु रखी हो तो दरवाज़ा खोलने में अधिक कठिनाई होती है, किंतु यही भारी वस्तु दरवाज़े के कब्जे के पास रखी हो तो दरवाज़ा एकदम आसानी से खुल जाता है। ऐसे उदाहरणों से छात्रों को शायद इस तरह की सैद्धांतिक परिभाषाओं को समझने में मदद मिलती। लेकिन न तो शिक्षक ही इसे समझाने की कोशिश कर रहे थे और न ही छात्र प्रश्न पूछ रहे थे।

जब पीरियड खत्म हो गया तो फाइनमेन ने एक छात्र से पूछा कि परीक्षा में भौतिकी के इस हिस्से को लेकर कैसे सवाल पूछे जा सकते हैं। छात्र ने सरल-सा जवाब दिया कि परीक्षा में पूछा जाएगा, "दो पिंड समतुल्य कब माने जाएंगे?" और हम लिखेंगे, "जब समतुल्य बलघूर्ण दो पिंडों में समान त्वरण उत्पन्न करते हैं तब उन पिंडों को समतुल्य माना जाएगा।"
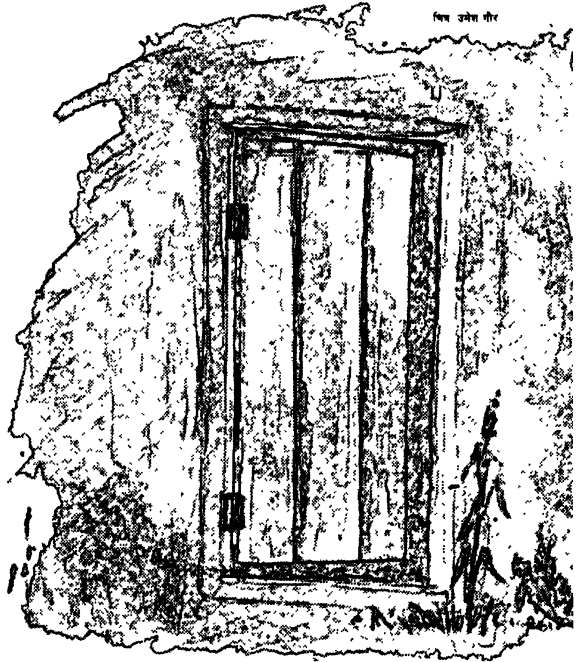
चित्र उमेश गौर

है न बढ़िया बात! न तो शिक्षक ने

* Two bodies are considered equivalent if equal torques will produce equal acclearation.

कुछ समझाया, न ही छात्रों की समझ में कुछ आया। फिर भी वे अच्छे अंक पा कर परीक्षा पास कर लेते हैं। फाइनमेन ने जब ध्यान से इस स्थिति पर गौर किया तो उन्होंने पाया कि लगभग सभी विषयों में पढ़ाई की यही स्थिति है।

***

कुछ ऐसी ही स्थिति उन्हें एक दूसरे इंजीनियरिंग कॉलेज में भौतिकशास्त्र पढ़ाने के दौरान महसूस हुई। उन्होंने देखा कि गणित के सवालों को हल करने की 'परीक्षण और चूक विधि' (Trial and Error Method) से छात्र परिचित नहीं थे। चूंकि यह विधि काफी उपयोगी है, इसलिए फाइनमेन ने सरल गणितीय उदाहरणों को गृहकार्य के रूप में देकर छात्रों से कहा कि वे इन्हें इस विधि से हल करके लाएं। बहुत कम छात्र दिया हुआ काम करके आए। जब फाइनमेन ने इस पर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की तो कुछ छात्रों ने कक्षा के बाद उनसे कहा कि यह सरल काम तो उनके स्तर के बहुत नीचे का है। वे तो इसके आगे बहुत कुछ पढ़ चुके हैं इसलिए इतने आसान से सवाल क्यों करें। जब बाद में फाइनमेन ने उन्हें कठिन प्रश्न हल करने को कहा तो परिणाम फिर वही '**ढाक के तीन पात**' निकला। मुश्किल से दस प्रतिशत छात्र गृहकार्य करके लाए। अब फाइनमेन की समझ में आया कि छात्रों को तो कुछ आता ही नहीं था, इसीलिए वे कोई भी प्रश्न नहीं हल कर पा रहे थे। फाइनमेन ने एक बात और महसूस की कि जब वे पढ़ाते थे तो कोई भी छात्र उनसे सवाल नहीं पूछता था। इस अनुभव के बारे में फाइनमेन ने लिखा है:

"अंत में एक छात्र ने मुझसे कहा कि यदि मैं कक्षा में आपसे सवाल पूछूंगा तो बाकी विद्यार्थी बाद में मुझ पर पिल पड़ेंगे और कहेंगे 'हम सब, कुछ सीखने की कोशिश कर रहे हैं और तुम शिक्षक से प्रश्न पूछ कर व्याख्यान में बाधा डाल रहे हो और हमारा समय नष्ट कर रहे हो।'

कुल मिलाकर यह एक ऐसी स्थिति थी जहां किसी को कुछ नहीं आता था किंतु हरेक व्यक्ति यह जताने की कोशिश कर रहा था कि उसे सब कुछ आता है और प्रश्न पूछने वाला व्यक्ति मूर्ख है, यानी हर विद्यार्थी खुद के अज्ञान को छुपाने का भौंडा प्रयास कर रहा था।

मैंने उन्हें बहुत समझाया कि समूह में काम करने, आपस में चर्चा करने और प्रश्न पूछने से फायदा होता है लेकिन छात्र अपनी यह मानसिकता अंत तक नहीं छोड़ सके कि किसी अन्य से पूछने पर सवाल पूछने वाले की हेठी होती है। यह एक दयनीय स्थिति थी। बुद्धिमान छात्रों में ऐसी मानसिकता पैदा कर देने वाली यह शिक्षा प्रणाली निरर्थक है, एकदम निरर्थक!"

***

जब फाइनमेन के वापस अमेरिका जाने का समय आया तो वहां के विद्यार्थियों ने उनसे अनुरोध किया कि वे ब्राज़ील में अध्यापन के दौरान अपने अनुभवों को लेकर एक व्याख्यान दें। इस व्याख्यान में छात्रों के अलावा प्राध्यापक

और शिक्षा विभाग के अधिकारी भी उपस्थित रहने वाले थे। इसलिए फाइनमेन ने आयोजकों से पहले ही यह अनुमति ले ली कि उन्हें अपने विचारों को खुले रूप से व्यक्त करने की छूट होगी। उनकी यह शर्त स्वीकार कर ली गई। फाइनमेन जब व्याख्यान देने के लिए सभागार के अंदर आए तो उनके हाथ में कॉलेज के प्रथम वर्ष में पढ़ाई जाने वाली भौतिक शास्त्र की पुस्तक थी। यह पुस्तक ब्राज़ील में बहुत अच्छी मानी जाती थी क्योंकि इसमें कई नवाचार किए गए थे जैसे – याद रखने लायक बहुत महत्वपूर्ण बातें मोटे-मोटे अक्षरों में और कम महत्वपूर्ण बातें पतले और बारीक अक्षरों में छपी थीं। किसी ने फाइनमेन से पूछा, "कहीं आप इस पुस्तक की आलोचना तो नहीं करने जा रहे हैं? जिस व्यक्ति ने यह पुस्तक लिखी है वह यहां मौजूद है, सब लोग यह मानते हैं कि यह एक बहुत अच्छी किताब है।"

फाइनमेन का जवाब था, "आप मुझसे यह वादा कर चुके हैं कि मैं जो चाहूंगा वो बोलने की छूट होगी।"

उन्होंने अपने भाषण के शुरू में यह बताया कि विज्ञान किसे कहते हैं और विज्ञान की पढ़ाई क्यों ज़रूरी है। फिर फाइनमेन ने यह कहते हुए धमाका कर दिया, "मेरे इस व्याख्यान का उद्देश्य यह दिखाना है कि ब्राज़ील में विज्ञान पढ़ाया ही नहीं जाता।" सारे श्रोता यह सुनकर चौंक पड़े – "क्या हम विज्ञान नहीं पढ़ाते? यह आदमी पागल है। हम तो प्राथमिक कक्षाओं से ही विज्ञान पढ़ाना शुरू कर देते हैं।"

फाइनमेन ने बोलना जारी रखते हुए कहा कि ब्राज़ील में उन्होंने प्राथमिक शाला के छात्रों को भौतिक शास्त्र की पुस्तकें खरीदते हुए देखा है। अमेरिका की तुलना में ब्राज़ील में बच्चे बहुत कम आयु में और बहुत बड़ी संख्या में भौतिक शास्त्र सीखना शुरू कर देते हैं। लेकिन उसके अनुपात में ब्राज़ील में भौतिक शास्त्रियों की संख्या बहुत कम है। ऐसा इसलिए है कि बच्चे मेहनत तो बहुत करते हैं किंतु इसका नतीज़ा कुछ नहीं निकलता।

फाइनमेन ने ऐसे देश की काल्पनिक कहानी सुनाई जहां हर बच्चा विदेशी भाषा सीख रहा था और उस विदेशी भाषा के ग्रंथ उन्हें रटे पड़े थे किंतु वे किसी भी ग्रंथ के किसी भी अंश का अर्थ अपनी स्वयं की भाषा में नहीं बता सकते थे। यही हाल ब्राज़ील में विज्ञान का हो रहा है। छात्रों ने विज्ञान की भाषा को बिना सोचे समझे रट तो लिया है किंतु उन्हें विज्ञान आता ही नहीं है।

फिर फाइनमेन ने भौतिक शास्त्र की पुस्तक दिखाते हुए कहा, "इस किताब में केवल एक ही स्थान पर प्रयोग से निकले हुए आंकड़े दिए गए हैं जिसमें यह दिखाया गया है कि एक झुके हुए तल (सतह) से गेंद लुढ़काने पर वह एक सेकेंड, दो सेकेंड, तीन सेकेंड आदि में कितनी दूरी तय करेगी। इन आंकड़ों में गलतियां भी हैं। जिनके कारण प्रयोग से प्राप्त आंकड़े, सैद्धांतिक गणना से प्राप्त आंकड़ों से भिन्न होते हैं। पुस्तक में यह

पढ़ा रहे हैं वह विज्ञान नहीं, केवल तोता रटंत है।"

फाइनमेन ने यही किया और ऐसे ही कोई भी पन्ना खोलकर छपा हुआ अंश पढ़ कर सुनाया, "रवों को कुचलने पर उत्पन्न होने वाले प्रकाश को घर्षण संदीप्ति (Turbo Luminiscence) कहते हैं।"

भी लिखा है कि प्रायोगिक त्रुटियों को सुधारने की आवश्यकता होती है। बहुत बढ़िया। **परन्तु मुश्किल यही है कि इन आंकड़ों से गणना करने पर आपको त्वरण का सही मूल्य मिल जाएगा!**

किंतु यदि गेंद लुढ़का कर यह प्रयोग वास्तव में किया जाए तो प्राप्त होने वाले आंकड़ों से पता चलेगा कि लेखक ने यह प्रयोग करके ही नहीं देखा है, सिर्फ अपनी समझ से ही लिख दिया है, क्योंकि इसमें जो आंकड़े दिए गए हैं वे किसी भी स्थिति में मिल ही नहीं सकते। क्योंकि किसी भी झुके हुए तल पर गेंद लुढ़कने के साथ-साथ घूमती भी है। और गेंद को घुमाने में जो बल लगता है उसके कारण गेंद पर लगने वाले बल का कुछ हिस्सा गेंद को घुमाने में खर्च हो जाता है। शेष बल गेंद में त्वरण पैदा करता है इसलिए त्वरण के आंकड़े इन आंकड़ों से कम ही आएंगे।

मैं बिना देखे किसी भी पृष्ठ पर अपनी उंगली रख दूंगा और वहां छपे अंश को पढ़ कर सिद्ध कर दूंगा कि आप लोग जो

फाइनमेन ने कहा, "क्या यह विज्ञान है। नहीं, आप केवल एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्दों में बता रहे हैं। आप इसके बारे में बात नहीं कर रहे कि कौन से रवों को कुचलने पर प्रकाश उत्पन्न होता है? यह प्रकाश क्यों उत्पन्न होता है? क्या आपकी पुस्तक पढ़ कर कोई छात्र घर में प्रयोग कर सकेगा? इसके स्थान पर आप पुस्तक में लिखते 'यदि आप मिश्री के टुकड़े को अंधेरे कमरे में प्लायर से कुचलेंगे तो आपको नीला प्रकाश दिखाई देगा। कुछ अन्य रवों के साथ भी यह होता है, किन्तु इसका कारण पता नहीं चल पाया है।' इस तरह से समझाने पर हो सकता है कि कम-से-कम कुछ छात्र तो घर पर यह प्रयोग करके देखेंगे।"

फाइनमेन ने तो केवल एक दृष्टांत दिया था, किंतु पूरी किताब इस प्रकार के उदाहरणों से भरी पड़ी थी। अंत में फाइनमेन ने कहा, "एक ऐसी प्रणाली से, जिसमें लोग केवल परीक्षाएं पास कर लेते हैं, और फिर दूसरों को परीक्षाएं पास करवाते हैं, कोई शिक्षित हो सकता है इसकी वे कल्पना ही नहीं कर सकते।

मिश्री वाला प्रयोग

फाइनमेन ने मिश्री वाले जिस प्रयोग का ज़िक्र किया है वो हमने भी करके देखा, आप भी देखिए खुद करके।

बस इतना करना है कि किसी एकदम अंधेरे कमरे में मिश्री के एक टुकड़े को प्लायर या रसोई में बर्तन पकड़ने वाली संड़ासी से झटके से कुचल दीजिए। गौर से देखिए ज़रा, क्या कोई रोशनी निकलती दिखी?

वैसे एक और मज़ेदार तरीका है। चेहरे के सामने शीशा रखकर मिश्री के टुकड़े को दांतों के बीच फंसाकर ज़रा ज़ोर से तोड़िए। दिखा न रोशनी का चमकारा, नीला-सफेद-सा। इसी प्रकाश को 'घर्षण संदीप्ति' कहते हैं!

फिर भी इस निकृष्ट शिक्षा प्रणाली से कुछ अच्छे छात्र निकलते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। मेरी कक्षा में दो ऐसे छात्र थे जिन्हें भौतिक शास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञान था।"

व्याख्यान समाप्त होने पर विज्ञान शिक्षण के विभागाध्यक्ष ने खड़े होकर कहा, "फाइनमेन की बातें हमें सुनने में ज़रूर कड़वी लगीं, लेकिन यह स्पष्ट है कि उन्होंने जो भी आलोचना की है, पूरी ईमानदारी और विज्ञान के प्रति प्रेम के कारण की है। अतः हमें उनकी बातों पर गौर करना चाहिए। मुझे यह तो पता था कि हमारी शिक्षा प्रणाली की हालत खराब है, किंतु आज पता चला कि उसे कैंसर हो गया है।"

इसके बाद कई लोगों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए और शिक्षा में सुधार लाने के लिए सुझाव दिए।

सबसे मज़ेदार बात यह हुई कि फाइनमेन ने अपने व्याख्यान में जिन दो अच्छे छात्रों का ज़िक्र किया था उन्होंने स्वीकार किया कि उनकी शिक्षा ब्राज़ील में न होकर अन्य देशों में हुई है। विज्ञान शिक्षण के विभागाध्यक्ष ने भी कहा कि उनकी शिक्षा ब्राज़ील में हुई थी। किंतु दूसरे विश्वयुद्ध के चलते हुए उस समय विश्वविद्यालय में पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं थे। इसलिए उन्होंने स्वयं ही पुस्तकों से पढ़ कर सीखा है।

अरविंद गुप्ते – प्राणीशास्त्र के प्राध्यापक। प्रशासन अकादमी, भोपाल में कार्यरत। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

यह लेख फाइनमेन (1918–1988) की आत्मकथा 'Surely, You' re Joking Mr. Feynman" पर आधारित है।
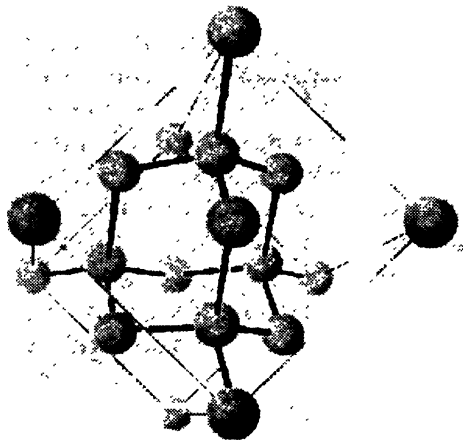
आवर्त सारणी के बारे में हम सब पता नहीं कब से पढ़ते आए हैं और औरों को समझाते भी रहे हैं। परन्तु शायद ही इस बात की तरफ कभी ध्यान जाता है कि तत्वों के इस तरह से जमाए जाने को भला आवर्त सारणी क्यूं कहते हैं।

आवर्ती यानी किसी चीज़ का बार-बार होना/घटना।

काफी समय पहले से वैज्ञानिकों को कई तत्वों में कुछ समानताएं नज़र आने लगी थीं। न सिर्फ तत्वों में समानताएं मिली परन्तु धीरे-धीरे यह भी अहसास होने लगा कि अगर तत्वों को उनके परमाणु भार के क्रम में जमाया जाए तो समान गुणों वाले तत्वों में एक नियमितता भी दिख रही है। बस, तबसे खूब सारे वैज्ञानिक उस धुंधले से अहसास को एक नियम के सांचे में बांधने की कोशिश में लग गए।

जैसे-जैसे परमाणु भार की समझ और बेहतर बनी वैसे-वैसे बहुत से वैज्ञानिकों ने तरह-तरह के प्रयास किए और आखिर में मेण्डेलीव ने 1889 में एक ढांचा दिया जिसने न सिर्फ तब तक की जानकारी को समेटा, परन्तु आगे के लिए कई भविष्यवाणियां भी कीं।

उसके द्वारा बताई हुई तत्वों की आवर्त सारणी आज तक बरकरार है – और उसे आवर्त सारणी इसलिए कहा गया क्योंकि उसमें समान गुणों वाले परमाणु एक नियमित अंतराल के बाद मिलते चले जाते हैं – और इन्हीं गुणों को ध्यान में रखते हुए सब तत्वों को एक क्रम, एक ढांचे में जमाया गया है।

विज्ञान में खाली स्थान

• सुशील जोशी

विज्ञान में ऐसी स्थिति काफी रोचक होती है जब आपको मालूम हो कि यहां कुछ है, लेकिन क्या है यह नहीं मालूम। कुछ ऐसी ही स्थिति में बनाई थी मेण्डेलीव ने आवर्त सारणी, जब वो अन्य तत्वों को एक नियम के अनुसार एक क्रम में जमाते हुए बीच में खाली स्थान छोड़ता गया कि यहां कोई अन्य तत्व है, जिसे अभी खोजा नहीं गया है। पूर्वानुमान के आधार पर हुए आवर्त सारणी के विकास की कहानी।

कई बार विज्ञान में ऐसे निर्णायक मोड़ आए हैं जब ज्ञान से ज़्यादा महत्व अज्ञान का रहा। मगर अज्ञान का महत्व तभी है जब आपको यह पता हो कि आप 'क्या नहीं जानते'। जब आप मानकर बैठ जाएं कि जानने योग्य सब कुछ हम जानते हैं ऐसी स्थिति विज्ञान के विकास के लिए काफी खतरनाक होती है। यह बात काफी पेचीदा नज़र आती है मगर यहां मैं एक ठोस उदाहरण के ज़रिये इसे प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा। यह उदाहरण है पदार्थों के वर्गीकरण से संबंधित और हम बात करेंगे सुप्रसिद्ध आवर्त सारणी की।

यह तो सब जानते ही हैं कि रसायन शास्त्र को एक ठोस सैद्धांतिक बुनियाद देने में आवर्त सारणी की भूमिका सर्वोपरि नहीं, तो निहायत महत्त्वपूर्ण अवश्य रही है। दरअसल 19वीं सदी के अंत में आवर्त नियम व आवर्त सारणी की रचना ने पदार्थों की संरचना संबंधी अनुसंधान को नई दिशा दी। परन्तु कहानी आवर्त सारणी से काफी पहले शुरू होती है। इस कहानी को, आवर्त नियम के रचयिता मेण्डेलीव ने निम्न शब्दों में समेटा है:

"आवर्त्त नियम दरअसल उन तथ्यों व सामान्यीकरण का सीधा नतीजा था जो 1860-70 के दशक के अन्त तक

एकत्रित हो चुके थे। यह (आवर्त नियम) उस सारी जानकारी की कमोवेश व्यवस्थित अभिव्यक्ति ही है।"

तो वे तथ्य और सामान्य सिद्धांत क्या थे, जिनकी ओर मेण्डेलीव ने इशारा किया है।

तत्वों की तिकड़ियां

1817 में जर्मन वैज्ञानिक डॉबराइनर ने तत्वों का एक तरह का वर्गीकरण करने का प्रयास किया। (गौरतलब है कि 1817 में तत्वों के परमाणु भार सही—सही आंके नहीं गए थे। दरअसल तत्वों के परमाणु भार आंकने की पद्धति पर सर्वसम्मति तो कैनिज़रो के प्रयासों से 1850 के बाद ही संभव हुई।) बहरहाल डॉबराइनर ने दिखाया था कि स्ट्रॉन्शियम का परमाणु भार कैल्शियम व बेरियम के परमाणु भारों का औसत है:

कैल्शियम 20
स्ट्रॉन्शियम 43.5
बेरियम 68.5

ध्यान रखने की बात है कि 1817 में उपरोक्त परमाणु भार ही मान्य थे। आगे चलकर 1829 में डॉबराइनर ने इस तरह की कई अन्य 'तिकड़ियों' की खोज की।

डॉबराइनर के काम को 1827 से 1858 के बीच ड्यूमास, ग्मेलिन, लेन्सन, पेटनफोकर तथा कुक ने आगे बढ़ाया। इन रसायनविदों ने बताया कि समान तत्वों के समूहों को 'तिकड़ियों' तक सीमित रखना ज़रूरी नहीं है। ऐसे समूह तिकड़ी से बड़े भी हो सकते हैं। मसलन डॉबराइनर की 'तिकड़ी' क्लोरीन-ब्रोमीन-आयोडीन (हैलोजन) के साथ फ्लोरीन को रखा जा सकता है। इसी प्रकार कैल्शियम-बेरियम-स्ट्रॉन्शियम के साथ मेग्नीशियम को भी रखा जा सकता है। ऐसे कई अन्य समूह भी बनाए गए।

मुख्य बात यह थी कि समान तत्वों के समूह बनाकर उनके परमाणु भारों के बीच में संबंध पहचाने जा रहे थे। खासतौर से ड्यूमास ने इस तरह के संबंधों की खोज में काफी योगदान दिया। उसने समान तत्वों के परमाणु भारों के बीच के इन संबंधों को काफी पेचीदा समीकरणों के रूप में व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की।

लगभग इसी समय आर. स्ट्रेकर ने तत्वों के परमाणु भारों के आंकड़ों को एक स्थान पर रखा और विश्लेषण के बाद एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही – *"यह संभव नहीं लगता कि समान गुणों वाले तत्वों के बीच परमाणु भारों में दिखने वाले ये संबंध मात्र संयोग हैं। बहरहाल इन संबंधों के नियम की खोज को भविष्य पर ही छोड़ना होगा।"*

मतलब यह बात पहचानी जाने लगी थी कि समान गुणों वाले तत्वों के परमाणु भारों के बीच कोई संबंध अवश्य है और इस संबंध को किसी नियम के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। अलबत्ता इस नियम का ओर-छोर पता नहीं चल रहा था।

इसी तारतम्य में चानकुर्ट्वाइज़ तथा न्यूलैण्ड्स का उल्लेख भी ज़रूरी है।

राज़ क्या संख्याओं में है?

चानकुर्ट्वाइज़ ने एक बेलन लिया। उसकी परिधि को 16 बराबर भागों में
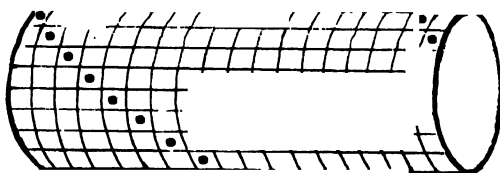
बांट लिया और लम्बाई में भी बराबर दूरी पर निशान लगा लिए। अब उसने तत्वों के परमाणु भारों को क्रम से इन चौखानों पर 'प्लॉट' किया। उसने पाया कि इस तरह 'प्लॉट' करने पर जो सर्पिलाकार आकृति मिलती है उसमें समान गुणों वाले तत्व ठीक एक-दूसरे के ऊपर या नीचे स्थित होते हैं। चानकुर्ट्वाइज़ ने इस आधार पर 1862 में निष्कर्ष दिया, *"तत्वों के गुण दरअसल संख्या के गुण हैं।"* कितना दूरगामी निष्कर्ष था यह। इसमें भी एक नियम की उपस्थिति का पूर्वाभास मिलता है।

या सरगम में?

न्यूलैण्ड्स ने जो प्रयास किया वह भी उतना ही महत्वपूर्ण था। न्यूलैण्ड्स ने संगीत सरगम से प्रेरणा लेकर तत्वों को आठ-आठ के समूहों में रखा। उसने पाया कि परमाणु भार के क्रम में जमाने पर हर आठवां तत्व पहले तत्व के समान होता है। यानी सात स्तम्भ बनाने पर ऊपर-नीचे एक समान गुणों वाले तत्व आते हैं।

न्यूलैण्ड्स ने जब लंदन की केमिकल सोसायटी की मिटिंग में 1866 में अपना पर्चा पढ़ा तो उसकी काफी आलोचना हुई। एक सदस्य ने तो यहां तक पूछ लिया कि क्या न्यूलैण्ड्स ने तत्वों को वर्णमाला के क्रम में जमाकर देखा है? हो सकता है कि उससे भी कुछ पैटर्न निकल आए।

मज़ाक की बात अलग, मगर न्यूलैण्ड्स के पर्चे की काफी संजीदा आलोचना भी हुई। परन्तु उस अलोचना में जाने से पहले अब तक की प्रगति का जायज़ा लेना लाभप्रद होगा क्योंकि इसमें एक महत्त्वपूर्ण बात छिपी है।

हमने देखा कि डॉबराइनर, ड्यूमास, ग्मेलिन, लेन्सन, पेटनफोकर, कुक, स्ट्रेकर आदि रसायनविदों ने समान गुणों वाले तत्वों के बीच परमाणु भार संबंधी पैटर्न खोजने की कोशिश की। तरह-तरह की

न्यूलैण्ड्स के अष्टक:

H	Li	Be	B	C	N	O
F	Na	Mg	Al	Si	P	S
Cl	K	Ca	Cr	Ti	Mn	Fe
C/Ni	Cu	Zn	Y	In	As	Se
Br	Rb	Sr	Ce/La	Zr	Dp/Mo	Ro/Ru

जमावट देखकर वे इतना तो समझ पाए कि परमाणु भार का तत्वों के गुणों से कुछ संबंध ज़रूर है।

फिर हमने चानकुर्ट्वाइज़ और न्यूलैण्ड्स के प्रयासों को देखा। पूर्व के प्रयासों और इन दो रसायनज्ञों के प्रयासों में एक महत्वपूर्ण अंतर है। पूर्व के रसायनज्ञ मात्र समान तत्वों के आपसी संबंधों पर गौर कर रहे थे जबकि चानकुर्ट्वाइज़ तथा न्यूलैण्ड्स ने सारे ज्ञात तत्वों को परमाणु भार के क्रम में जमाकर फिर तत्वों में गुणों की पुनरावृत्ति को देखने का प्रयास किया। यानी ये दो लोग एक अनजाने नियम को लागू करने व उसकी पुष्टि करने की कोशिश में लगे हुए थे।

खासतौर से न्यूलैण्ड्स ने इसे एक ठोस नियम के रूप में व्यक्त भी कर दिया था – यह बात उसके ऊपर बताए गए पर्चे के शीर्षक से ही स्पष्ट है: 'अष्टक का नियम और परमाणु भारों के बीच संख्यात्मक संबंधों के कारण'। केमिकल सोसायटी की उस दिन की रिपोर्टिंग में कहा गया था कि ''लेखक एक नियम की खोज का दावा करता है जिसके मुताबिक....''।

'अष्टक' की आलोचना:

इस संदर्भ में न्यूलैण्ड्स के प्रस्ताव की आलोचना विशेष महत्त्व रखती है। शायद इसी आलोचना में भावी प्रगति के बीज छिपे थे। न्यूलैण्ड्स के पर्चे की आलोचना तीन मुद्दों पर की गई थी:

1. कि इसमें मान लिया गया है कि सारे तत्वों की खोज हो चुकी है। इशारा यह था कि जब नए तत्व खोजे जाएंगे तो उनका क्या हो – सरगम में वे कहां रखे जाएंगे? इस आलोचना का एक ठोस कारण यह था कि न्यूलैण्ड्स द्वारा यह प्रस्ताव दिए जाने से पूर्व के चंद वर्षों में चार नए तत्व (थैलियम, इण्डियम, सीज़ियम और रूबिडियम) खोजे गए थे।
2. हर आठवें तत्व पर गुणों की पुनरावृत्ति की दृष्टि से न्यूलैण्ड्स को कुछ जुगाड़ भी जमाने पड़े थे। मसलन उसने कोबाल्ट व निकल को एक ही स्थान पर रख दिया था। यदि इन्हें अलग-अलग रखा जाता तो क्लोरीन के बाद आठवें स्थान पर ब्रोमीन नहीं आ पाती। ऐसी कई विसंगतियां थीं।
3. कई सारे असमान तत्व एक ही समूह में आ गए थे। यह आप तालिका में भी देख सकते हैं।

वास्तव में न्यूलैण्ड्स के अष्टक नियम को सर्वाधिक धक्का पहुंचाने वाली आलोचना तो सबसे पहले वाली है। दूसरी और तीसरी आलोचना की दिक्कतों से तो थोड़ा रद्दोबदल करके निपटा जा सकता था। मगर पहली आलोचना का क्या जवाब दिया जाता?

इस आलोचना का जवाब देने के लिए अवधारणा के स्तर पर और वैज्ञानिक विधि के स्तर पर एक सर्वथा नई सोच की ज़रूरत थी। यहीं मेण्डेलीव का पदार्पण होता है।

उसकी अपनी नज़र में:

मेण्डेलीव ने 1889 में लिखे एक पर्चे में उन परिस्थितियों का ज़िक्र किया

है जिनमें वह आवर्त सारणी और आवर्त नियम की रचना कर पाया था। एक उम्दा वैज्ञानिक की तरह मेण्डेलीव ने अपने से पहले के सारे वैज्ञानिकों के कार्य को उचित सम्मान दिया है। साथ ही उसने उनके प्रयासों की बुनियादी त्रुटि का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। मेण्डेलीव के उसी पर्चे का निम्न अंश इन दो चीज़ों (पूर्ववर्तियों के काम का सम्मान और सकारात्मक आलोचना) का सुन्दर मिश्रण है:

"जमावट के ऐसे प्रयासों और ऐसे नज़रियों में ही आवर्त नियम की सच्ची पहल देखी जा सकती है। इसकी बुनियाद 1860 व 1870 के बीच बन चुकी थी और इस दशक के अंत तक इसकी (आवर्त नियम की) निश्चित अभिव्यक्ति न हो पाने का कारण, मेरी राय में, यह है कि मात्र समान तत्वों की तुलना की जा रही थी। सारे तत्वों के परमाणु भारों के बीच संबंध खोजने का विचार उस दौर में प्रचलित विचारों के लिए अनजाना था और इसीलिए न तो चानकुर्ट्वाइज़ का बेलन और न ही न्यूलैण्ड्स का अष्टक किसी का ध्यान खींच सका। मगर चानकुर्ट्वाइज़ और न्यूलैण्ड्स......दोनों ही आवर्त नियम के काफी करीब थे और इसके बीज पा चुके थे।"

संक्षेप में, मेण्डेलीव ने अपने पहले के सारे प्रयासों का अध्ययन करके तीन महत्त्वपूर्ण सबक सीखे थे:

1. कि जब तक सारे तत्वों को शामिल नहीं किया जाता, तब तक कोई नियम नहीं बनाया जा सकता।
2. पहले के सभी प्रयासों में सर्वोपरि

मेण्डेलीव

चीज़ नियम नहीं बल्कि तथ्य थे। मतलब यह कि एक नियम बनाकर उसके आधार पर तथ्यों को व्यवस्थित करने की कोशिश नहीं की गई थी। कोशिश यह की गई थी कि उपलब्ध तत्वों को व्यवस्थित करके नियम ढूंढा जाए।
3. इन सब प्रयासों का एक सबक यह भी था कि इनमें नए खोजे जाने वाले तत्वों के लिए कोई स्थान न था। मेण्डेलीव को यकीन हो था कि भविष्य में कई तत्व जाएंगे।

मेण्डेलीव ने अपना काम इन तीन बातों को ध्यान में रखकर शुरू किया।

संख्या और गुण जब एक साथ देखे

इस काम के लिए मेण्डेलीव ने हर तत्व का एक कार्ड बनाया जिस पर उसका परमाणु भार तथा प्रमुख गुणधर्म लिख लिए। अब इन्हें परमाणु भार के क्रम में जमाना शुरू किया। यह काम खासा मुश्किल साबित हुआ। कई तत्वों के परमाणु भारों को लेकर विवाद थे। (वैसे तब तक परमाणु भारों के निर्धारण को लेकर क्या तरीके अपनाए जाएं इसके बारे में एकराय बनने लगी थी। परमाणु भार के निर्धारण में तुल्यांकता का महत्त्व स्थापित हो चुका था। मेण्डेलीव ने इन दोनों बातों का फायदा उठाया।) मेण्डेलीव को कई मर्तबा यह तय करना पड़ा कि वह कौन-सा परमाणु मानें। मसलन बेरिलियम को लेकर दो मत थे – एक था कि उसका परमाणु भार 9 है और दूसरा था कि परमाणु भार 14 है। मेण्डेलीव ने तय किया कि 9 का आंकड़ा ठीक है! यह निर्णय उसने कैसे लिया? निर्णय लेने की वजह यह थी कि मेण्डेलीव सिर्फ परमाणु भार नामक एक अमूर्त संख्या के आधार पर नहीं, बल्कि तत्वों के रासायनिक गुणों की जानकारी के आधार पर भी समूहीकरण कर रहा था। अतः उसके लिए यह कोई मशीनी क्रिया नहीं थी। दूसरी बात यह थी कि मेण्डेलीव को एक नियम की उपस्थिति पर पूरा भरोसा था।

बेरिलियम का फैसला कर लेने के बाद कार्डों की जमावट कुछ इस तरह बनी:

H 1						
Li 7	Be 9	B 11	C 12	N 14	O 16	F 19
Na 23	Mg 24	Al 27	Si 28	P 31	S 32	Cl 35

इससे स्पष्ट है कि मेण्डेलीव ने तत्वों को मात्र परमाणु भार के क्रम में जमाने का मशीनी कार्य नहीं किया। जहां उसे लगा कि परमाणु भार के क्रम में जमाने से समान तत्व ऊपर-नीचे नहीं आ रहे हैं वहां उसने परमाणु भार पर संदेह किया। यदि वह ऐसा न करता तो आवर्त नियम कभी न उभरता।

उदाहरण के लिए मात्र परमाणु भार के आधार पर तत्वों की अगली कतारें निम्नानुसार बनतीं (नीचे दूसरी टेबल):

पोटेशियम तो सोडियम के नीचे और कैल्शियम, मेग्नीशियम के नीचे ठीक ही आ गए। मगर वैनेडियम को बोरॉन-एल्युमिनियम के नीचे रखना मेण्डेलीव को ठीक नहीं जंचा। उसने वैनेडियम का कार्ड अलग करके उसकी जगह प्रश्न चिन्ह वाला एक कार्ड रख दिया।

K 39	Ca 40	V 51	Cr 52	Ti 52	Mn 55	Fe 56	Co 59
Ni 59	Cu 63	Zn 65	As 75	Sc 78	Br 80		

चलिए, हो गया। अब वैनेडियम का कार्ड अगले स्थान पर यानी कार्बन-सिलिकॉन के नीचे आना था। मेण्डेलीव ने वह भी नहीं किया। उसकी जगह टाइटेनियम का कार्ड रख दिया। यानी उसने मनमर्ज़ी से टाइटेनियम का परमाणु भार 52 से बदलकर 48 कर दिया।

इसका अर्थ यही है कि मेण्डेलीव को दृढ़ विश्वास था कि रासायनिक गुण परमाणु भार के अनुसार एक आवर्त चक्र में बदलते हैं। उसे यह भी भली भांति पता था कि उस समय की पदार्थों के रासायनिक गुणों से संबंधित जानकारी ज़्यादा भरोसेमंद थी। परमाणु भारों को लेकर तो कई विवाद थे, दुविधाएं थीं। अतः उसने इस दुविधा के मद्देनज़र निर्णय किया कि यदि बदला जाएगा, तो परमाणु भार! यह काफी दुःसाहसी निर्णय कहा जाएगा।

बहरहाल प्रश्न चिन्हों के साथ तत्वों की कतारें कुछ यों बनीं:

और बनने लगे पूर्वानुमान

इन प्रश्न चिन्हों वाले कार्डों का महत्त्व क्या था? इनका अर्थ था कि ये तत्व अभी खोजे जाने हैं। मसलन कैल्शियम (40) और टाइटेनियम (48) के बीच एक तत्व अवश्य ही मौजूद होगा जो तब तक खोजा नहीं गया था। प्रकृति के एक नियम के प्रति विश्वास का यह उम्दा नमूना है। मेण्डेलीव ने अपने पर्चे में सबसे पहली 'भविष्यवाणी' यह की थी कि इस तत्व का परमाणु भार कैल्शियम व टाइटेनियम के परमाणु भारों का औसत यानी लगभग 44 होगा। इसके गुणों का भी उसने पूर्वानुमान किया था।

यहां तक कि इस तत्व के लगभग आपेक्षिक घनत्व की 'भविष्यवाणी' भी मेण्डेलीव ने कर दी थी। उसने यह भी बताया था कि प्रकृति में यह तत्व किस अवस्था में मिलेगा। यह तत्व (स्कैण्डियम) सन् 1879 में मेण्डेलीव के जीते जी ही खोजा गया। इसके गुण भविष्यवाणी के

H 1									
Li 7	Be 9	B 11	C 12	N 14	O 16	F 19			
Na 23	Mg 24	Al 27	Si 28	P 31	S 32	Cl 35			
K 39	Ca 40	?	Ti 48	V 51	Cr 52	Mn 55	Fe 56	Co 59	Ni 59
Cu 63	Zn 65	?	?	As 75	Se 78	Br 80			

ОПЫТЪ СИСТЕМЫ ЭЛЕМЕНТОВЪ.

основанной на ихъ атомномъ вѣсѣ и химическомъ сходствѣ.

			Ti=50	Zr=90	?=180.
			V=51	Nb=94	Ta=182.
			Cr=52	Mo=96	W=186.
			Mn=55	Rh=104,4	Pt=197,4.
			Fe=56	Ru=104,4	Ir=198.
			Ni=Co=59	Pl=106,6	Os=199.
H=1			Cu=63,4	Ag=108	Hg=200.
	Be=9,4	Mg=24	Zn=65,2	Cd=112	
	B=11	Al=27,4	?=68	Ur=116	Au=197?
	C=12	Si=28	?=70	Sn=118	
	N=14	P=31	As=75	Sb=122	Bi=210?
	O=16	S=32	Se=79,4	Te=128?	
	F=19	Cl=35,5	Br=80	I=127	
Li=7	Na=23	K=39	Rb=85,4	Cs=133	Tl=204.
		Ca=40	Sr=87,6	Ba=137	Pb=207.
		?=45	Ce=92		
		?Er=56	La=94		
		?Yt=60	Di=95		
		?In=75,6	Th=118?		

बाएं – अपने आवर्त नियम को लेकर 1 मार्च 1869 को मेण्डेलीव द्वारा अलग-अलग वैज्ञानिकों को भेजा गया पर्चा: इस पर्चे में जहां-जहां प्रश्नवाचक चिन्ह दिख रहे हैं मेण्डेलीव का कहना था वहां कोई तत्व आएंगे, जिनको खोजा जाना बाकी है।

दाएं – मेण्डेलीव की आवर्त सारणी पर आधारित आवर्त सारणी जो अभी उपयोग में लाई जाती है।

अनुरूप ही पाए गए। 'खाली स्थानों' ने 'भविष्यवाणी' की जो संभावना प्रस्तुत की उसने आवर्त नियम व मेण्डेलीव की सारणी को व्यापक मान्यता दिलवाने में बहुत मदद की। इसके अलावा नए तत्वों की खोज को गति भी मिली।

खाली स्थानों वाली आवर्त सारणी

मेण्डेलीव की पहली आवर्त सारणी (1871) में 35 खाली स्थान थे। उसके द्वारा बनाई गई अंतिम सारणी (1906) में 25 खाली स्थान रह गए थे। इसमें 'शून्य समूह' आ चुका था (यानी आजकल की आर्वत सारणी में जो सबसे पहली खड़ी लाईन होती है)। मेण्डेलीव ने कुल 17 तत्वों के परमाणु भार बदलने की गुस्ताखी की थी। यह काम पूरा करने के बाद 1871 में मेण्डेलीव ने आवर्त नियम को प्रस्तुत किया:

"तत्वों के गुण और तद्नुसार उनके द्वारा बने सरल व जटिल पदार्थों के गुण, तत्वों के परमाणु भारों का आवर्त कार्य हैं।"

यह थी मोटे तौर पर आवर्त नियम और आवर्त सारणी की कहानी। इसमें यह स्पष्टतः उभरकर आता है कि प्रकृति बाबत हमारे ज्ञान के 'खाली स्थान' प्रगति के पथ प्रदर्शक होते हैं।

MENDELEEV'S PERIODIC TABLE OF THE ELEMENTS

Periods	I (A B)	II (A B)	III (A B)	IV (A B)	V (A B)	VI (A B)	VII (A B)	VIII (A)	VIII	VIII (B)
1	H						1 H 1.0079 Hydrogen	2 He 4.00260 Helium		
2	3 Li 6.94 Lithium	4 Be 9.01218 Barylium	5 B 10.81 Boron	6 C 12.011 Carbon	7 N 14.0067 Nitrogen	8 O 15.999 Oxygen	9 F 18.99840 Fluorine	10 Ne 20.17 Neon		
3	11 Na 22.98977 Sodium	12 Mg 24.305 Magnesium	13 Al 26.98154 Aluminium	14 Si 28.08 Silicon	15 P 30.9737 Phosphorus	16 S 32.06 Sulphur	17 Cl 35.453 Chlorine	18 Ar 39.94 Argon		
4	19 K 39.09 Potassium	20 Ca 40.08 Calcium	21 Sc 44.9559 Scandium	22 Ti 47.90 Titanium	23 V 50.941 Vanadium	24 Cr 51.996 Chromium	25 Mn 54.9380 Manganese	26 Fe 55.84 Iron	27 Co 58.9332 Cobalt	28 Ni 58.70 Nickel
	29 Cu 63.54 Copper	30 Zn 65.38 Zinc	31 Ga 69.72 Gallium	32 Ge 72.5 Germanium	33 As 74.9216 Arsenic	34 Se 78.9 Selenium	35 Br 79.904 Bromine	36 Kr 83.80 Krypton		
5	37 Rb 85.467 Rubidium	38 Sr 87.62 Strontium	39 Y 88.9059 Yttrium	40 Zr 91.22 Zirconium	41 Nb 92.9064 Niobium	42 Mo 95.94 Molybdenum	43 Tc 98.9062 Technetium	44 Ru 101.0 Ruthenium	45 Rh 102.9055 Rhodium	46 Pd 106.4 Palladium
	47 Ag 107.868 Silver	48 Cd 112.40 Cadmium	49 In 114.82 Indium	50 Sn 118.6 Tin	51 Sb 121.7 Antimony	52 Te 127.6 Tellurium	53 I 126.9045 Iodine	54 Xe 131.30 Xenon		
6	55 Cs 132.9054 Cesium	56 Ba 137.3 Barium	57 La* 138.905 Lanthanum	72 Hf 178.4 Hafnium	73 Ta 180.947 Tantalum	74 W 183.8 Tungsten	75 Re 186.207 Rhenium	76 Os 190.2 Osmium	77 Ir 192.2 Iridium	78 Pt 195.0 Platinum
	79 Au 196.9665 Gold	80 Hg 200.5 Mercury	81 Tl 204.3 Thallium	82 Pb 207.2 Lead	83 Bi 208.9804 Bismuth	84 Po [209] Polonium	85 At [210] Astatine	86 Rn [222] Radon		
7	87 Fr [223] Francium	88 Ra 226.0254 Radium	89 Ac** [227] Actinium	104 Ku [261] Kurchatovium	105 Ns [260] (Nilsbonum)	106	107			

* LANTHANIDES

58 Ce	59 Pr	60 Nd	61 Pm	62 Sm	63 Eu	64 Gd	65 Tb	66 Dy	67 Ho	68 Er	69 Tm	70 Yb	71 Lu
140.12	140.907	144.2	[145]	150.4	151.96	157.2	158.9254	162.5	164.9304	167.2	168.9342	173.0	174.97
Cerium	Praseodymium	Neodymium	Promethium	Samarium	Europium	Gadolinium	Terbium	Dysprosium	Holmium	Erbium	Thulium	Ytterbium	Lutetium

** ACTINIDES

90 Th	91 Pa	92 U	93 Np	94 Pu	95 Am	96 Cm	97 Bk	98 Cf	99 Es	100 Fm	101 Md	102 (No)	103 (Lr)
232.0381	231.0359	238.02	237.0482	[244]	[243]	[247]	[247]	[251]	[254]	[257]	[258]	[255]	[256]
Thorium	Protactinium	Uranium	Neptunium	Plutonium	Americium	Curium	Berkelium	Californium	Einsteinium	Fermium	Mendelevium	(Nobelium)	Lawrencium

लोथर मेयर

इस कहानी में लोथर मेयर के महत्वपूर्ण योगदान की बात छूट गई है। कई वैज्ञानिक आवर्त सारणी व आवर्त नियम की स्वतंत्र खोज का श्रेय लोथर मेयर को भी देते हैं। इस पर कोई टिप्पणी करना यहां ज़रूरी नहीं है। बस इतना कहना पर्याप्त होगा कि लोथर मेयर का योगदान बहुत महत्वपूर्ण था। मगर यहां उसे बीच में डालने से तर्क का सिलसिला टूट जाता। इसी प्रकार से विलियम ऑडलिंग ने भी आवर्त सारणी के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आवर्त के तर्क की तलाश

एक बार आवर्त सारणी का निर्माण हो जाने पर उसकी गहराई से छानबीन शुरू हुई। सबसे पहले तो इसकी विसंगतियों की ओर ध्यान गया। मसलन टेलुरियम का परमाणु भार 127.6 है और आयोडीन का 126.9 है। इस लिहाज से आयोडीन को टेलुरियम से पहले आना चाहिए मगर मेण्डेलीव की सारणी में उसे बाद में स्थान दिया गया था, जो उसके रासायनिक गुणों के उपयुक्त था। ऐसी विसंगतियां हल होने में अभी वक्त था। तत्वों की परमाणु संरचना की समझ बनने के बाद ही यह समस्या सुलझ पाई।

दरअसल आवर्त सारणी की वजह से यह प्रश्न उठा कि आखिर तत्वों के गुणों में यह आवर्तता क्यों है? तथा इसका परमाणु भार से संबंध किस वजह से है? जैसे-जैसे इस सवाल का जवाब मिलता गया, सारणी सुधरती गई।

इसी प्रकार से नए तत्वों की खोज ने भी आवर्त सारणी के समक्ष कई चुनौतियां खड़ी कीं। फिर चल पड़ा आवर्त सारणी में बदलाव और बदलावों का सिलसिला। खैर आवर्त सारणी बन जाने के बाद की रोचक दास्तान तो अभी यहां सुनाना संभव नहीं है।

सुशील जोशी – होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध, पर्यावरण एवं विज्ञान विषयों में सतत लेखन।
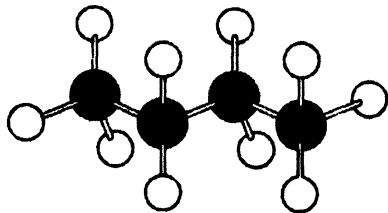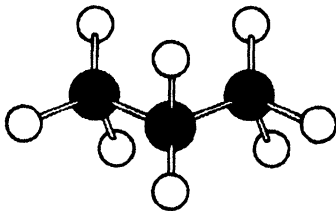
बीजों में श्वसन

विज्ञान ऐसे ही आगे बढ़ता

किशोर पवार

जीव विज्ञान की कक्षाओं में कई बार यह प्रश्न उठता है कि क्या सूखे बीज जीवित हैं। जानकार लोगों द्वारा जवाब 'हां' में दिया जाता है। यह कहा जाता है कि बीज बोने पर वे उगकर नया पौधा बनाते हैं। क्योंकि जीव से ही जीव उत्पन्न होता है इसलिए बीज जीवित हुए – उनसे ही तो नया पौधा बनता है।

जीव विज्ञान की कक्षाओं में कई बार यह प्रश्न उठता है कि क्या सूखे बीज जीवित हैं। जानकार लोगों द्वारा जवाब 'हां' में दिया जाता है। यह कहा जाता है कि बीज बोने पर वे उगकर नया पौधा बनाते हैं। क्योंकि जीव से ही जीव उत्पन्न होता है इसलिए बीज जीवित हुए - उनसे ही तो नया पौधा बनता है।

पर बिना उगाये क्या यह तय किया जा सकता है कि बीज जीवित हैं या नहीं? अब अगर हम यह दिखा सकें कि बीजों में श्वसन हो रहा है तो बीजों को जीवित मानना ही पड़ेगा।

श्वसन क्रिया में तकरीबन सभी जीव ऑक्सीजन इस्तेमाल करते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। मनुष्य द्वारा सांस में छोड़ी गई हवा में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा ज़्यादा होती है, यह तो आसानी से दिखाया जा सकता है। यदि आप चूने के पानी के घोल में से एक नली द्वारा फूंक मारकर लगातार हवा गुज़ारें तो चूने का पानी दूधिया हो जाता है। ऐसे ही अगर फिनाफ्थलीन के रंगीन घोल में फूंक मारें तो उसका रंग उड़ जाता है। जबकि चूने के पानी या फिनाफ्थलीन के रंगीन घोल में से किसी पंप द्वारा हवा गुज़ारें तो कोई परिवर्तन नहीं होता या फिर बदलाव बहुत ही धीमा होता है।

ऐसा ही एक प्रयोग सन् 1988 में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के शिक्षक प्रशिक्षण शिविर के दौरान बीजों को लेकर किया गया था। जिसमें तरह-तरह के सूखे बीजों से चार-पांच
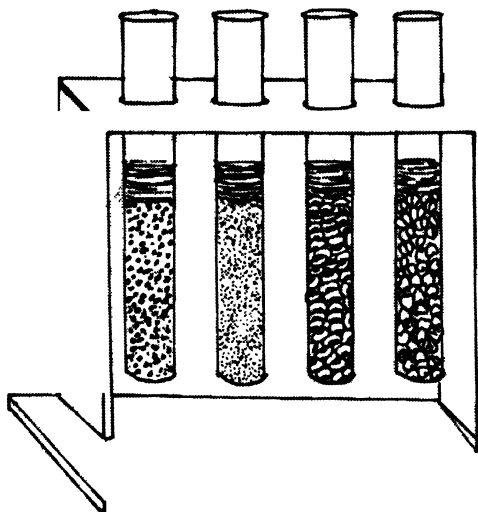
बीज जीवित हैं या निर्जीव: यह पता करने के लिए एक प्रयोग – चारों परखनलियों में फिनोफ्थलीन का गुलाबी सूचक घोल डालकर तीन में बीज डाले हैं और चौथी में रेत के कण। इन्हें थोड़ी देर यूं ही रखा रहने देते हैं। यही कोई दो-तीन घंटे।
कुछ समय बाद उन सब परखनलियों का रंगीन घोल रंगहीन हो जाता है जिनमें बीज डाले थे। जबकि रेत वाले घोल का रंग पहले जैसा ही रहता है।

परखनलियों को आधा-आधा भर दिया और फिर उनमें फिनाफ्थलीन का रंगीन घोल डाला गया। लगभग एक घंटे बाद अवलोकन लेने पर देखा गया कि जिन परखनलियों में बीज रखे थे उनमें घोल का रंग हल्का होने लगा। ज़्यादा समय तक रखने पर फिनाफ्थलीन का रंग बिल्कुल उड़ जाता है।

रंग में परिर्वतन बीजों के आसपास सबसे पहले होता है, जहां बीज घोल के संपर्क में आ रहे हैं। ऐसा लगा कि प्रयोग सफल रहा। बीजों से श्वसन के दौरान कार्बन डाइऑक्साइड निकली और रंगीन फिनाफ्थलीन को रंगहीन कर दिया।

यानी यह तय हो गया कि सूखे बीज श्वसन करते हैं। इस प्रयोग में तुलना का प्रावधान (कन्ट्रोल) रखने के लिए इन सब बीज वाली परखनलियों के साथ एक परखनली में धुली हुई रेत या कंकड़ लिए जाते हैं। उसमें भी फिनाफ्थलीन का रंगीन घोल भरा जाता है।

बुरे फंसे

इस प्रयोग से प्रेरित होकर हमारे एक शिक्षक साथी पटैल मास्साब ने यही प्रयोग सूखी पत्तियों के चूरे और पेड़ों की सूखी छाल के साथ करके देखा। पता चला कि दोनों फिनाफ्थलीन का

रंग उड़ा देते हैं। तो क्या यह मान लिया जाए कि सूखी पत्तियां और पेड़ों की छाल भी श्वसन करते हैं!

कुछ देर के लिए तो सब सोच में पड़ गए कि आखिर चक्कर क्या है, गलती कहां हुई? फिर समझ में आया कि दरअसल फिनोफ्थलीन तो सूचक मात्र है जो अम्लीय माध्यम में गुलाबी से रंगहीन हो जाता है। अर्थात उससे सिर्फ यह पता लगता है कि माध्यम अम्लीय हो गया है। लेकिन माध्यम श्वसन की प्रक्रिया के कारण पैदा हुई कार्बन डाइऑक्साईड के पानी में घुलने से अम्लीय हुआ है या किसी और कारण से — इस प्रयोग में यह पता करने का तो कोई तरीका नहीं है।

थोड़ा दिमाग लड़ाने पर यह तो समझ में आ गया कि अधिकांश पत्तियां और छाल अम्लीय होती हैं इसलिए उन्होंने फिनोफ्थलीन का रंग उड़ा दिया। पर अब सवाल यह था कि पटैल मास्साब ने जिस उलझन में फंसा दिया है उसमें से निकला कैसे जाए? आखिर कैसे साबित किया जाए कि बीज श्वसन करते हैं?

इस प्रयोग में एक और दिक्कत थी कि फिनोफ्थलीन के रंगीन घोल में डालने पर स्वाभाविक है कि बीज भीग जाते हैं। इसलिए जब घोल का रंग उड़ जाता है तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि भीगे हुए बीज श्वसन करते हैं। यह कतई नहीं कहा जा सकता कि सूखे बीज श्वसन करते हैं।

इसलिए यह तय किया गया कि अगली बार प्रयोग को इस तरह डिज़ाइन

पहले वाले प्रयोग को करने का एक बेहतर तरीका: पता तो करना था कि सूखे बीज श्वसन करते हैं कि नहीं लेकिन पहले वाले प्रयोग में केवल यही कहा जा सकता है कि गीले बीज श्वसन करते हैं, क्योंकि बीज फिनोफ्थलीन में भीग जाते हैं। इसलिए इस प्रयोग में फिनोफ्थलीन और बीज व रेत के बीच रूई लगाकर दोनों को अलग-अलग कर दिया गया है ताकि बीज या रेत भीगें नहीं और जांच की जा सके कि सूखे बीज भी श्वसन करते हैं या नहीं।
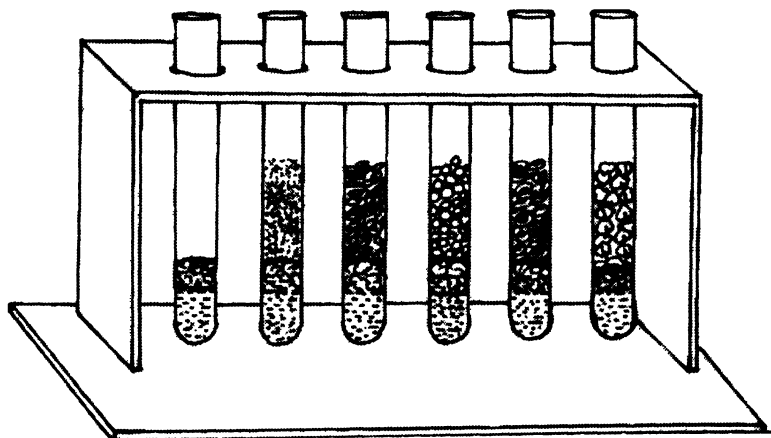
किया जाए कि बीज या सूखी पत्तियां फिनोफ्थलीन के सीधे संपर्क में ही न आयें। ऐसे में अम्लीय होते हुए भी ये पदार्थ घोल का रंग नहीं उड़ा पाएंगे। और यदि श्वसन हुआ तभी कार्बन डाइऑक्साइड निकलेगी जो फिनोफ्थलीन को रंगहीन कर पायेगी अन्यथा कोई परिवर्तन नहीं होगा।

एक कोशिश और

हाल ही में वेड़छी (गुजरात) में इस तरह के एक और विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के दौरान इस प्रयोग को करने का फिर से मौका मिला। इस बार परखनली में फिनोफ्थलीन का रंगीन घोल भर कर उस पर सावधानी से एक रूई का फाहा लगा दिया।

रूई के फाहे के ऊपर बिना किसी चीज़ को हिलाए-डुलाए धीरे-धीरे से ऊपर तक बीज भर दिए जाते हैं। इसमें भी तुलना का प्रावधान रखने के लिए एक परखनली में रूई के फाहे के ऊपर रेत रख दी जाती है। चार-पांच घंटे बाद देखा गया कि जिन परखनलियों में रूई के फाहे पर बीज रखे गए थे उन सब में फिनोफ्थलीन का रंग उड़ जाता है। इससे स्पष्ट तौर पर सिद्ध होता है कि 'सूखे बीज' श्वसन करते हैं। चूंकि कार्बन डाइऑक्साइड गैस हवा से भारी है, अतः रूई से होती हुई नीचे जाकर फिनोफ्थलीन को रंगहीन बना देती है।

अब यह प्रयोग सूखी पत्तियों व छाल के साथ करने पर भी कोई परेशानी नहीं हुई।

संभावनाएं और भी हैं

आप भी इस प्रयोग को खुद करके देखिए और अपने विद्यार्थियों से भी करवाइए। प्रयोग करते वक्त कई और प्रश्नों पर भी गौर किया जा सकता है, जैसे कि –

क्या सब परखनलियों में रंग परिवर्तन की दर एक जितनी ही है या कुछ परखनलियों में कम या ज़्यादा है? क्या इस आधार पर हम विभिन्न बीजों की श्वसन दर के बारे में पक्के तौर पर कुछ कह सकते हैं? रूई की जगह क्या किसी अन्य पदार्थ का उपयोग बीजों को फिनोफ्थलीन से दूर रखने के लिए किया जा सकता है?

इस पूरी प्रक्रिया के दौरान यह प्रयोग तो ज़्यादा सटीक बना ही पर साथ ही एक और बात समझ में आई कि शायद इसी तरह के प्रश्नों, उलझनों और उन्हें हल करने की कोशिशों से भी विज्ञान आगे बढ़ता है।

किशोर पवार – शासकीय महाविद्यालय, सेंधवा, खरगोन, म. प्र. में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक।

पूंछ छोड़ कर भागती है

सवालः छिपकली दीवार पर कैसे चिपक जाती है और टूटने के बाद उसकी नई पूंछ कैसे आ जाती है?

जवाबः जीवों को ज़िंदा रहने के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ता है। खुद के लिए भोजन की तलाश और दूसरों का भोजन बन जाने से अपने आप को बचाना हर जीवित के लिए आवश्यक है। शत्रुओं से बचने के लिए इनमें अलग-अलग प्रकार के बचाव के साधन देखे जाते हैं। जैसे बिच्छू या मधुमक्खी का डंक, गुलाब के कांटे, गिरगिट का रंग बदलना..... बहुत ही अलग-अलग तरह के तरीके पाए जाते हैं प्राणियों-पौधों में। छिपकली का पूंछ को छोड़कर भागना व पूंछ के टूटे हुए टुकड़े का हिलते रहना ऐसा ही एक तरीका है।

छिपकली में एक अद्‌भुत क्षमता होती है कि जब भी कभी उसे अपने किसी शत्रु से खतरा महसूस होता है या फिर उसकी पूंछ शत्रु की पकड़ में आ जाती है, तो वह अपनी पूंछ छोड़कर भाग जाती है। कटी हुई पूंछ कुछ देर तक तड़पती-छटपटाती रहती है, जिससे शत्रु का ध्यान उसमें लग जाता है। तब तक छिपकली किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंच जाती है।
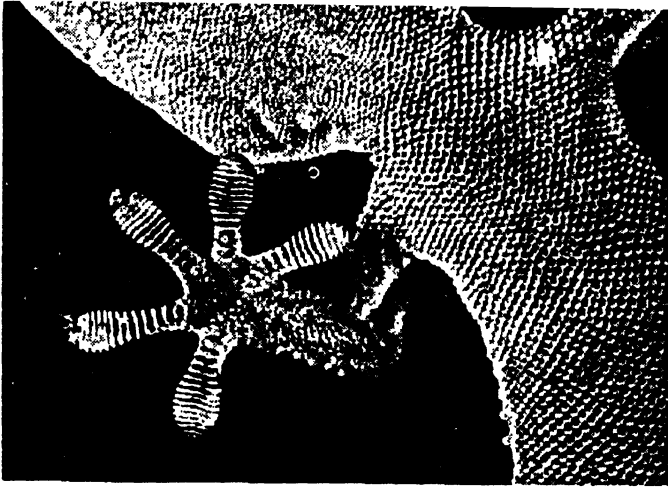
किसी शत्रु को इस तरह से चकमा देने वाली छिपकली की पूंछ में एक विशेषता होती है। उसकी पूंछ की हड्डी और रीढ़ की हड्डी के बीच का जोड़ बहुत कमज़ोर होता है। इसलिए थोड़ा-सा दबाव पड़ने पर या छिपकली की अपनी कोशिश से वह आसानी से टूट जाता है, जिससे पूंछ शरीर से अलग हो जाती है। अलग हुए इस टुकड़े में तंत्रिकाओं के बचे हुए हिस्से एक साथ उत्तेजित हो जाते हैं, जिसकी वजह से कटा हुआ सिरा कुछ सेकेंड तक छटपटाता रहता है।

पूंछ के टूट कर पीछे रह जाने पर पीछा करने वाला शत्रु कुछ क्षण के लिए हतप्रभ रह जाता है। उसे समझ नहीं आता कि वह पूंछ को पकड़े या आगे भाग रही छिपकली को। टूटी हुई पूंछ छटपटाते रहने के कारण शत्रु और भी ज़्यादा भ्रमित हो जाता है। चूंकि पूंछ दूर नहीं भागती, सामान्य तौर पर शत्रु का पहला आक्रमण उसी पर होता है। इतना समय छिपकली के भागने के लिए पर्याप्त होता है। हां, पर इन सब के बावजूद कुछ शत्रु छिपकली को पकड़ ही लेते हैं।

एक बात और, छिपकली की पूंछ छुड़वाना सरल काम नहीं है। छोटे-मोटे खतरों पर वह अपनी पूंछ नहीं छोड़ती, जब उसे लगता है कि अब पकड़ी जाएगी और पकड़ने पर मार दी जाएगी तभी वह अपनी पूंछ छोड़ती है। कुछ दिनों में छिपकली की पूंछ दुबारा निकल आती है। किन्तु यह पहली पूंछ से कुछ मायने में फर्क होती है। नई पूंछ में कोई हड्डी नहीं होती; हड्डियों के बजाय इसमें उपास्थी (कार्टिलेज) से बनी एक नली होती है जो इस पूंछ को आकार देती है। इसकी लंबाई-चौड़ाई भी पहले वाली पूंछ से कुछ कम होती है।

एक और बात पर तुमने शायद गौर किया होगा। छिपकली की पूंछ टूट जाने

के बाद भी खून नहीं निकलता। असल में छिपकली की पूंछ में खून की नलियां होती ही नहीं हैं! खून की नलियां जहां पूंछ शुरू होती है वहीं तक रहती हैं। इसीलिए पूंछ टूट जाने पर भी उनको कोई नुकसान नहीं पहुंचता और खून भी नहीं निकलता।

हां, तो अब सवाल के दूसरे हिस्से का जवाब देखते हैं कि छिपकली दीवार पर कैसे चिपक जाती है? दरअसल सीधी-सपाट या खुरदुरी ज़मीन पर चलना तो हम सभी जानते हैं, पर खड़ी दीवारों या कांच जैसी चिकनी सतहों पर चलना या फिर छत पर उल्टे लटककर रेंगना तो छिपकली के ही बस की बात है।

छिपकली के पंजों की बनावट ऐसी होती है कि वह बहुत चिकनी सतह पर भी चिपकी रह सकती है। उसके पंजे की हर अंगुली की निचली सतह पर सोलह से इक्कीस शल्क होते हैं। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर ये शल्क खपरैलनुमा धारियों की तरह दिखते हैं।

प्रत्येक शल्क पर बाल के समान लगभग 1,50,000 अत्यंत बारीक रचनाएं होती हैं और हर-एक बालनुमा रचना खुद 2000 हिस्सों में बंटी होती है, जिसके प्रत्येक हिस्से का छोर गोल
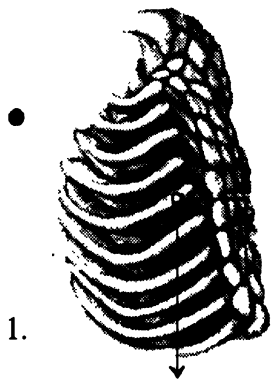
1. छिपकली की एक अंगुली और उस पर खूब सारे खपरैलनुमा शल्क। ऊपर के छोर पर छिपकली का नाखून भी दिख रहा है।
2. प्रत्येक शल्क पर पाई जाने वाली लाखों बालनुमा रचनाएं। इसमें पहले चित्र के एक छोटे से हिस्से को बड़ा करके दिखाया गया है।
3. दूसरे चित्र की हर बालनुमा रचना खुद 2000 हिस्सों में बंटी होती है। ऐसे हर हिस्से का छोर तश्तरीनुमा दिखता है। पंजों पर बनी यही करोड़ों अत्यन्त बारीक तश्तरियां ही असली राज़ है – छिपकली के दिवार पर चिपके रहने और छत पर उल्टा लटककर चलने का।
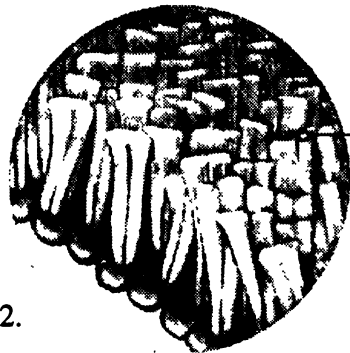
तश्तरीनुमा आकार लिए होता है। आप अंदाज़ा लगाइए कि ये रचनाएं कितनी बारीक होती होंगी? वास्तव में ये इतनी बारीक होती हैं कि कांच की सतह जिसे हम चिकना समझते हैं, इनके लिए खुरदुरी ही नहीं, बहुत अधिक खुरदुरी होती है। इनके आकार का अंदाज़ा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि अगर इन्हें एक-दूसरे से सटाकर रखा जाए तो एक सेंटीमीटर में ऐसी 50,000 तश्तरीनुमा रचनाएं समा सकती हैं। और छिपकली जब दीवार पर चल रही होती है तो लगभग 10 करोड़ तश्तरीनुमा रचनाओं के किनारे दीवार की सतह से सटे होते हैं!

इसीलिए हमें चिकनी दिखने वाली सतहों पर भी छिपकली बिना फिसले आराम से चल सकती है। छिपकली की विभिन्न जातियों में शल्क तथा उनकी अन्य रचनाओं की संख्याओं में थोड़ा-बहुत फर्क ज़रूर हो सकता है।

सचेत न रहे तो वो भी फंस सकती है

सवाल : मकड़ी अपने जाल में खुद क्यों नहीं फंसती?

जवाबः मकड़ी अपने जाल में खुद क्यों नहीं फंसती इस सवाल पर बात करने से पहले ज़रा यह तो देख लें कि मकड़ी जाला क्यों बुनती है और उसे बुनती कैसे है।

मकड़ी के शरीर में कई रेशम ग्रंथियां होती हैं जो लगातार एक लस-लसा पदार्थ बनाती हैं। यह लसलसा पदार्थ मकड़ी के शरीर के पिछले हिस्से में स्थित नली जैसी रचनाओं से बाहर निकलता है। प्रत्येक मकड़ी में ऐसी सौ से लेकर हज़ार तक नलियां होती हैं। अलग-अलग रेशम ग्रंथियों को इस्तेमाल करके मकड़ी अपने मनमाफिक तरह-तरह के धागे बना सकती है — चिपचिपे, साधारण या और किसी तरह के। ऐसा इसलिए
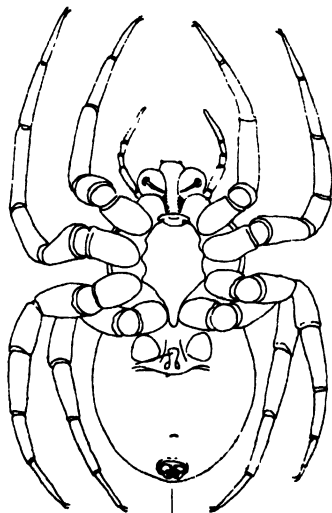
न सिर्फ तरह-तरह के धागे यहां से निकलते हैं बल्कि उनकी बुनाई भी यहीं होती है।
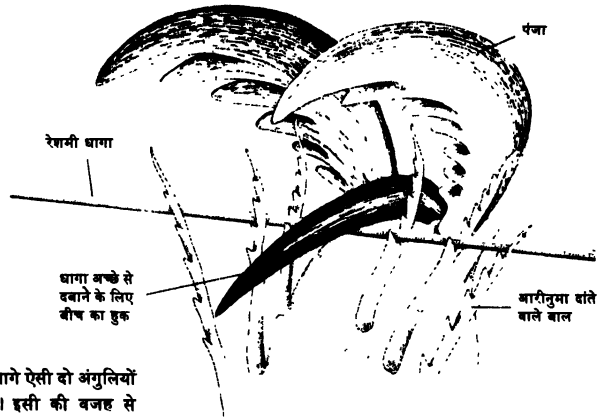
मकड़ी के आठों पंजों के आगे ऐसी दो अंगुलियों जैसी रचना दिखती है। इसी की वजह से मकड़ी चिपचिपे धागे पर भी आसानी से चल पाती है। बीच का हुक रेशमी धागे को कसकर दबाकर पकड़ने के लिए होता है।

संभव बनता है क्योंकि अलग-अलग तरह की रेशम ग्रंथियों से पैदा होने वाले पदार्थ एक-दूसरे से फर्क होते हैं। इसलिए जिस तरह की ज़रूरत हो, मकड़ी उसके मुताबिक ज़रूरी रेशम ग्रंथियों को सक्रिय बनाकर उनमें बनने वाला पदार्थ नलियों से बाहर निकालने लगती है।

इन नलियों से बहुत-ही बारीक धागे निकलते हैं। इन पतले धागों को एक-दूसरे में गूंथकर मकड़ी एक मज़बूत धागा बनाती है। फिर इस धागे से मकड़ी अपना जाला बुनती है। मकड़ी के जाल के महीन धागे वास्तव में कई अत्यंत पतले-पतले धागों के आपस में गुंथने से बना एक धागा है। यानी कि मकड़ी के जाल का एक महीन-सा दिखने वाला धागा उससे भी पतले कई रेशों से बना होता है। तुम यकीन नहीं करोगे पर एक मिलीमीटर में मकड़ी के 10,000 धागे समा सकते हैं।

मकड़ी यह रेशमनुमा पदार्थ बनाती क्यों है? इस बात पर गौर करें तो दो बातें समझ में आती हैं। एक तो मकड़ी अपने अण्डों के चारों ओर एक घनी जाली बुनती है जिसमें अण्डे सुरक्षित रहते हैं। दूसरा, मकड़ी इस धागे से जाल बुनकर अपनी भोजन की समस्या को हल करती है।

अब आते हैं तुम्हारे सवाल पर कि मकड़ी अपने जाल में खुद क्यों नहीं फंसती? मकड़ी अपने जाल को बहुत करीने से जमा-जमाकर बनाती है। जैसा कि शुरूआत में ही ज़िक्र किया गया था कि मकड़ी की रेशम ग्रंथियां चिपचिपे और साधारण दोनों किस्म के धागे बनाती हैं। जाल के इन चिपचिपे धागों में उलझकर कोई भी कीड़ा-मकोड़ा फंस जाता है और फिर जाले में से निकल नहीं पाता। जब शिकार जाल में फंस

जाए तो मकड़ी या तो अपने शिकार को तुरन्त निपटा देती है या फिर उसे अच्छी तरह से धागों में उलझाकर-बांधकर भविष्य के भोजन के लिए रख देती है।

यह देखा गया है कि जाल के वे धागे जो साइकिल के पहिए की तीलियों (स्पोक) की तरह बुने होते हैं वे जाल को मज़बूती देने वाले साधारण धागे होते हैं। जाल में जलेबी की तरह गोल-गोल जमाए धागे चिपचिपे होते हैं। इन चिपचिपे धागों में कीड़े-मकोड़ों के साथ-साथ, अगर सावधानी न बरते तो, मकड़ी खुद भी उलझ सकती है।

मकड़ी साधारण धागों पर तो आसानी से चल ही सकती है क्योंकि इनमें चिपचिपाहट नहीं होती। लेकिन मकड़ी तो पूरे जाल में जहां चाहे वहां आसानी से चलती हुई दिखाई देती है। फिर उन चिपचिपे धागों में खुद क्यों नहीं फंस जाती? दरअसल मकड़ी की आठों टांगों के पंजों में एकदम छोर पर दो-दो अंगुलियों की तरह की बनावट होती है। इन अंगुलियों में खास बात यह होती है कि इन पर चिपचिपे धागों की चिपचिपाहट का कोई असर नहीं पड़ता। अपनी अंगुलियों की इस खासियत के कारण मकड़ी चिपचिपे धागों पर भी आसानी से चलती है। हां; चिपचिपे धागों पर चलते समय मकड़ी अपने शरीर के बाकी हिस्सों को धागे से छूने से बचाती है। वैसे मकड़ी कोशिश यही करती है कि साइकिल के पहिए की तीलियों जैसे धागों पर बैठकर या लटककर आराम करे क्योंकि इनमें फंसने का कोई खतरा नहीं होता।
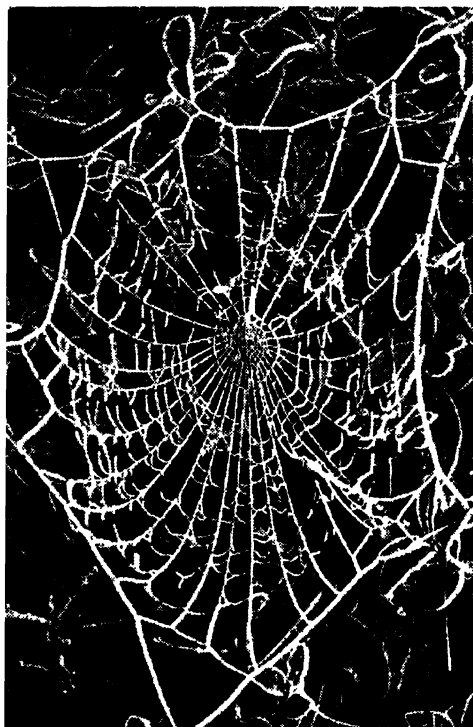
(मकड़ी ऐसा जाला बुन कैसे पाती है – पृष्ठ ९६ पर)

छिपकली वाला सवाल शा. कन्या हाईस्कूल, टोंक खुर्द (ज़िला-देवास) की विद्यार्थी रजनी भण्डारी ने और मकड़ी के जाले वाला सवाल रीतेश रमेश भावसार, न्यू यार्ड, इटारसी (ज़िला-होशंगाबाद) ने पूछा था।

इस बार के सवाल

सवाल-1 गिरगिट अपना रंग कैसे बदलता है। मनुष्य या दूसरा जानवर अपना रंग क्यों नहीं बदल सकता?

माधवी पुरोहित
कक्षा दसवीं
शास. कन्या हाई स्कूल
टोंक खुर्द, ज़िला—देवास

सवाल-2 गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते?

रुस्तम कुमार चव्हाण
मलोथर
तहसील इटारसी
ज़िला—होशंगाबाद

इन सवालों के जवाब आपके पास भी होंगे। उन्हें इस पते पर लिख भेजिए।

संदर्भ
द्वारा एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, 461 001

सही जवाबों को अगले अंक में प्रकाशित किया जाएगा?

कैसे बनाती है मकड़ी जाला, शुरुआत कहां और अंत कहां? मकड़ी के जाला बनाने के बारे में और जानकारी पेज 96 पर।
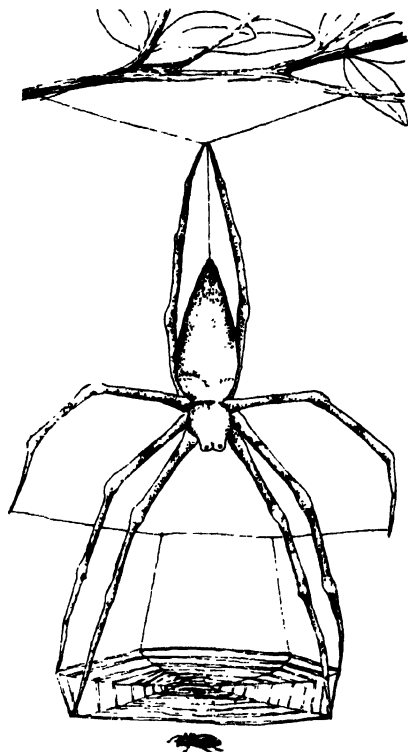
इंतज़ार कैसा

आमतौर पर मकड़ियां इंतज़ार करती हैं अपने जाल में शिकार के फंसने का – परंतु इस मकड़ी में इतना धीरज कहां! पेड़ों की टहनियों के बजाए अपने ही पैरों के बीच जाल बुन लेती है और शिकार दिखने पर झपटकर उसे अपने जाल में फंसा लेती है।

लुढ़कता सिक्का क्यों चलता जाए?

पांचवें अंक में हमने आपसे एक सवाल पूछा था कि जब किसी सिक्के को सतह पर सीधा खड़ा करने की कोशिश करते हैं तो वो आसानी से खड़ा नहीं रहता। पर अगर सिक्के को हल्का-सा धक्का लगाकर लुढ़काते हैं तो वो आसानी से खड़ा-खड़ा चलने लगता है, ऐसा क्यों होता है? यहां हम दे रहे हैं इस सवाल का जवाब और साथ ही एक नया सवाल।
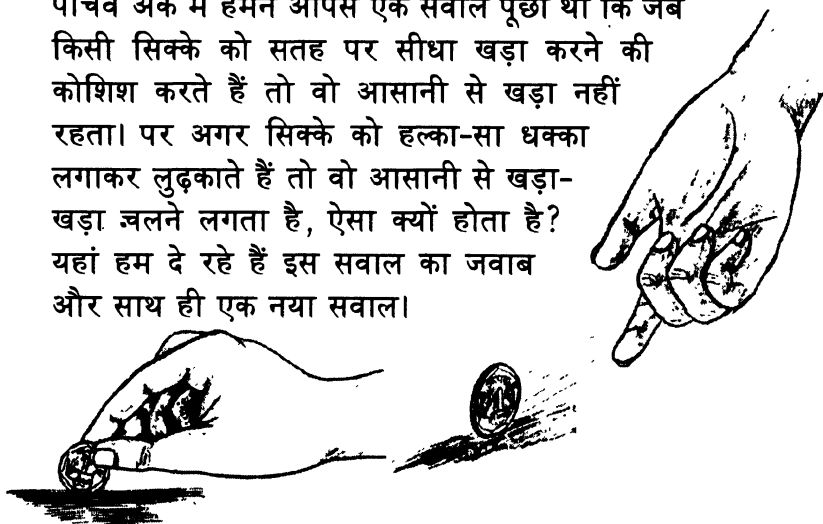
मुमकिन है इस सवाल को पढ़कर आप कहें – हजूर, सिक्का तो आखिर सिक्का ही रहता है चाहे आप उसे एक जगह खड़ा करने की कोशिश में जुटे रहें या फिर उसे लुढ़काकर चलता कर दें। हां, अगर कुछ फर्क है तो सिर्फ उसकी गति में। आप शायद यह भी सोचें कि – हो न हो, लुढ़कते सिक्के के खड़े रह पाने का राज़ ज़रूर उसकी गति से जुड़ा है। तभी तो लुढ़कते सिक्के की जैसे-जैसे गति कम होती जाती है, जनाब लड़खड़ाने लगते हैं और कुछ ही देर में चारों खाने चित नज़र आते हैं। आपका ऐसा सोचना स्वाभाविक भी है और वाजिब भी।

दरअसल सिक्के को खड़ा तो किया जा सकता है। पर खड़े हुए स्थिर सिक्के का संतुलन बड़ा ही कमज़ोर और अस्थिर होता है। सिक्के के संतुलन से हमारा तात्पर्य सिक्के पर (और उसके द्वारा) लगने वाले बलों के संतुलन से है। खड़े हुए सिक्के को ज़रा-सा धक्का, जैसे हवा का हल्का-सा झोंका या फिर ज़मीन का क्षणिक कंपन, मिलते ही उससे जुड़े बलों

का संतुलन बिगड़ जाता है। अब सवाल यह उठता है कि ऐसे धक्कों का प्रभाव लुढ़कते हुए सिक्के पर क्यों नहीं पड़ता? आखिर लुढ़कते हुए सिक्के पर भी वे सब बल उन्हीं दिशाओं में लग रहे हैं जो स्थिर खड़े सिक्के पर लगते हैं। जनाब, इसका राज़ है – लुढ़कते हुए सिक्के का घूर्णन वेग (Angular Momentam)।

घूर्णन वेग के कमाल की चर्चा करने से पहले क्यों न हम इस प्रश्न से जुड़े एक मूलभूत सिद्धांत पर गौर फरमा लें।

वैसे यह ज़रूरी तो नहीं कि हमारा अनुभव हमेशा इस बात की गवाही दे, पर भौतिकी के एक मूलभूत सिद्धांत (न्यूटन का गति का प्रथम नियम) के अनुसार – कोई भी वस्तु अगर स्थिर है तो स्थिर ही रहती है, और अगर चलायमान है तो उसी गति से उसी दिशा में चलती रहती है, जब तक की उस पर कोई अन्य बल नहीं लगता। यानी वस्तु की गतीय स्थिति (State Of Motion) बदलने के लिए उस पर किसी बल का लगना ज़रूरी है।

हां, पर यह कदापि ज़रूरी नहीं है कि बल लगने पर किसी वस्तु की चाल में परिवर्तन हो ही जाए या फिर इतना परिवर्तन हो कि आप उसे महसूस कर सकें। यह इसलिए कि, एक वस्तु पर लगने वाला कुल बल उस की चाल में बदलाव लाने में कितना सक्षम है वह इन दोनों बातों पर निर्भर करता है –

अ : उस बल की मात्रा और दिशा क्या है,

ब: और साथ-साथ इस पर भी निर्भर करता है कि – उस चीज़ का जड़त्व और वेग कितना है।

एक वस्तु का जड़त्व और वेग जितना अधिक होगा उसकी गतीय स्थिति में परिवर्तन लाना उतना ही कठिन होता है, यानी उसकी स्थिति में बदलाव लाने के लिए उतने ही अधिक बल की ज़रूरत पड़ेगी। वैसे एक कंचे के माध्यम से यह बात आप खुद परख सकते हैं। एक रुके हुए कंचे को फूंक मारकर लुढ़काइए। यकीनन आप ऐसा कर पाएंगे। अब उसी कंचे को तेज़ी से लुढ़काकर फूंक मारकर देखिए।

अब यह बात सिर्फ वस्तुओं की रेखीय गति से जुड़ी हुई नहीं है। किसी धुरी पर घूमती चीज़ों पर भी यह बंदिश लागू होती है। यानी एक वस्तु जितनी तेज़ गति से घूमेगी उसके घूर्णन वेग को बदलना उतना ही कठिन होगा।

यहां यह स्पष्ट कर देना ज़रूरी हो जाता है कि वेग में दो किस्म के बदलाव हो सकते हैं। एक दिशा का और दूसरा मात्रा का। वेग में किसी भी प्रकार की तबदीली के लिए बल की आवश्यकता होती है।

चलिए अब वापस आ जाते हैं सिक्के पर। एक लुढ़कता हुआ सिक्का जब डगमगाता है या गिरने लगता है, तो उसके घूर्णन वेग में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन मुख्यतः दिशा का ही होता है। अब एक रुके हुए खड़े सिक्के का घूर्णन वेग तो शून्य ही होगा, जबकि एक तेज़ी से लुढ़कते हुए सिक्के का एक अच्छा-खासा घूर्णन वेग होगा ऐसा माना जा सकता है। इसलिए ज़ाहिर है कि एक
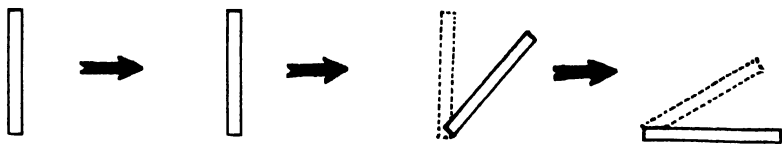
खड़े हुए सिक्के को गिराने के लिए जितने बल की ज़रूरत पड़ेगी, उतना बल संभवत: एक तेज़ी से लुढ़कते सिक्के को डगमगाने में भी सक्षम न हो। यानी जिन हल्के हवा के झोकों को रुका हुआ सिक्का झेल नहीं पाता और फर्श पर ढेर हो जाता है, उन्हीं हवा के झोकों से बेखबर लुढ़कता हुआ सिक्का चलता रहेगा।

लेकिन कब तक? जी हां, हमेशा के लिए तो नहीं क्योंकि लुढ़कते सिक्के का समय के साथ, घर्षण के कारण, वेग भी क्षीण होता जाएगा और साथ ही साथ छोटे-मोटे धक्कों को झेलने की कुव्वत भी। इसलिए तो हम देखते हैं कि जैसे-जैसे सिक्के की गति धीमी होने लगती है सिक्का लड़खड़ाने लगता है और अंतत: पस्त होकर गिर पड़ता है।

अब तक आपको शायद यह भी अंदाज़ा लग गया होगा कि लट्टू एक पतली-सी नोक पर कैसे घूम पाता है? जी हां, सिर्फ लट्टू या चकरी ही नहीं, अनेक अन्य चीज़ें भी अपने संतुलन और गतिज स्थिति को कायम रखने के लिए घूर्णन वेग की मदद लेती हैं।
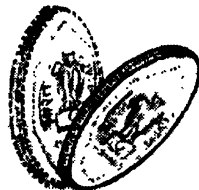
अब चूंकि इतनी बात हो ही चुकी है तो क्यों न एक छोटा-सा प्रयोग भी कर लिया जाए। आखिर, हाथ कंगन को आरसी क्या ... । एक साइकिल के पहिए

को एक एक्सल पर फिट कर लीजिए। केवल पहिए की रिम हो तो भी चलेगा। एक्सल पकड़कर बिना घूमते हुए, स्थिर पहिए की दिशा बदलना तो आसान है, पर तेज़ी से घूमते पहिए की दिशा बदलने की कोशिश करके देखें। क्या हुआ? काफी मेहनत करनी पड़ी! भई, आखिर घूर्णन वेग का कमाल है, थोड़ा-बहुत चक्कर खाएंगे ही।

○○ *इस बार का ज़रा सिर तो खुजलाइए का सवाल पेज नंबर 79 पर*

बच्चों को कक्षा में जैसा बताया गया उन्होंने मान लिया, इस दिशा में उनकी एक धारणा बन गई। यह धारणा कहां तक चली – पहली से पांचवीं तक या दसवीं तक या फिर और आगे . . . . ? भिन्न के सिद्धांत को बच्चों ने कैसे समझा। पांचवीं और दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के बीच किए गए एक सर्वे पर आधारित एक रिपोर्ट।

● माधव केलकर

"सवा छोटा चौथाई बड़ा"

अक्सर विद्यार्थी गणित के बहुत से सवालों के जवाब तो सही लिख देते हैं लेकिन जवाब उन्होंने किस समझ के साथ दिए हैं इस बात की तह में जाने की कोशिश हम लोग कम ही करते हैं। इसलिए थोड़ा गहराई में जाकर बच्चों में भिन्न की समझ की जांच करने के उद्देश्य से हमने एक टेस्ट पेपर तैयार किया और कक्षा पांचवीं व दसवीं के विद्यार्थियों से उसे हल करवाया। साथ ही बच्चों से बातचीत करके यह जानने की कोशिश भी की गई कि उन्होंने अपने उत्तर क्या सोचते हुए दिए हैं। इस बातचीत के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश यहां दिए जा रहे हैं।

1/4 का क्या अर्थ

मैं पांचवी कक्षा में एक टेस्ट पेपर लेकर गया जिसमें भिन्न से संबंधित कुछ सवाल थे। क्लास रूम में जाकर ब्लैक बोर्ड पर सवाल लिख दिए। थोड़ी देर बाद बच्चे सवाल हल करके उत्तर पुस्तिकाएं देने लगे। मैं भी उत्सुकतावश उत्तरों पर एक नज़र डालने लगा। मैंने देखा टेस्ट पेपर के प्रश्न "1/4 को चित्र से दिखाओ।" को कई बच्चों ने सिर्फ गोले या चौकोन को चार हिस्सों में बांटकर दिखाया था। मुझे लगा शायद बच्चे चार हिस्सों में से एक हिस्से में रंग भरना भूल गए हैं। इसलिए मैंने बच्चों से यूं ही पूछा कि

एक बटा चार को चित्र से कैसे दिखाएंगे?

तुरंत तीन-चार बच्चों ने हाथ हवा में लहराकर कहा, "मैं बताऊंगा सर।" मैंने एक बच्चे को बुलाकर ब्लैक बोर्ड पर बनाने को कहा। बच्चे ने एक गोला बनाया और उसके चार हिस्से कर दिए।
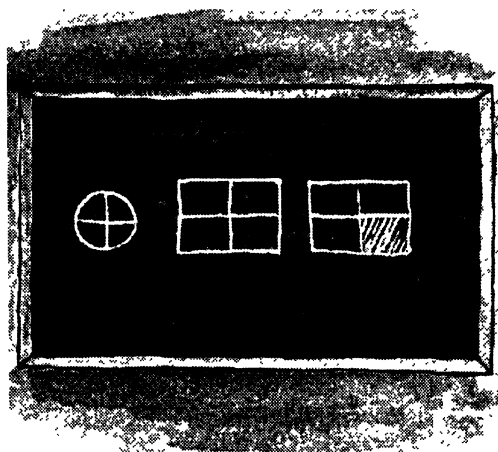
उसी समय एक दूसरा लड़का भागकर ब्लैक बोर्ड के पास आया और बोला, "सर यह गलत बनाया है।"

मैंने उससे कहा, "तो तुम एक बटा चार को सही-सही बनाकर दिखाओ।"

दूसरे लड़के ने एक बड़ा चौकोन बनाया और उसे चार हिस्सों में बांटा और बोला यह है एक बटा चार।

तब पहला बच्चा बोला, "मैंने भी तो यही बनाया है सर।"

अब मुझे मामला दिलचस्प लगने लगा था। मैंने दूसरे बच्चे से पूछा, "इसने गोले को चार हिस्सों में बांटा और तुमने चौकोन को। लेकिन तुम तो कह रहे थे इसने गलत बनाया है। इन दोनों में क्या अंतर है?"

दूसरा बच्चा चुप रहा।

तब मैंने कक्षा की ओर देखकर पूछा, "क्यों भाई इन दोनों ने एक बटा चार बनाया है या नहीं?"

एक तीसरा बच्चा ब्लैक बोर्ड के पास आया और उसने एक गोला बनाया। उसे चार हिस्सों में बांटा। चार हिस्सों में से एक हिस्से में रंग भरा और बोला, "यह है एक बटा चार।"

दूसरा बच्चा जिसने चौकोन बनाया था बोल पड़ा, "मैं भी ऐसा ही बनाने वाला था।"

मैंने तीसरे बच्चे से पूछा, "अच्छा यह तो बताओ तुमने चार हिस्सों में से एक हिस्से को ही क्यों रंगा? और बाकी गोले को क्यों छोड़ दिया?"

बच्चा कुछ सकुचाया और बोला, "यह तो मालूम नहीं सर, लेकिन हमें एक बटा चार ऐसे ही बनाना सिखाया गया था।"

दूसरा बच्चा (जिसने चौकोन को

चार हिस्सों में बांटा था), "मैं बताऊं सर, एक हिस्सा क्यों रंगते हैं?"

मैंने तुरंत उस बच्चे से कहा, "हां-हां ज़रूर बताओ।

बच्चा ब्लैक बोर्ड पर अपने बनाए चौकोन के पास गया और बोला, "जी इस चौकोन में पांच चौकोन हैं, चार छोटे और एक बड़ा। और हमें चाहिए एक बटा चार इसलिए एक चौकोन को रंगकर अलग कर दिया। अब इस बड़े चौकोन में तीन चौकोन बच गए। और कुल चौकोन चार हो गए, तीन छोटे और एक बड़ा चौकोन। हो गया एक बटा चार।"

मैंने उस बच्चे से फिर कहा, "तुम्हारी चार चौकोनों वाली बात तो ठीक है। क्या तुम यह बात गोले के साथ भी बता सकते हो कि बड़े गोले में चार छोटे गोले कैसे होते हैं?"

बच्चे ने एक नज़र ब्लैक बोर्ड पर डाली और बोला, "इसीलिए तो मैं कह रहा था कि गोले से एक बटा चार दिखाना गलत है।"

3/4 का क्या है मतलब...

पांचवीं कक्षा में टेस्ट पेपर करवाने के बाद मैं दसवीं कक्षा में गया। वहां सवाल लिखवाने के कुछ देर बाद ही बच्चों ने उत्तर पुस्तिकाएं देना शुरू कर दिया। मैंने कुछ उत्तरों को देखा और यूं ही पूछ लिया, "कौन-सा प्रश्न सबसे कठिन लगा?"

एक लड़के ने बताया, "जी चित्र वाला, जिसमें तीन बटे चार को चित्र से दिखाना था।" लेकिन तीन-चार लड़के बोल पड़े, "सरल था, सरल था।"

मैंने पहले लड़के से पूछा कठिन क्यों लगा तो उसने बताया, "जी तीन बटे चार को चित्र से कैसे दिखाना है नहीं मालूम।"

अब मैंने उन तीन लड़कों को ब्लैक बोर्ड के पास बुलाया (जिन्होंने कहा था सरल है) और कहा, "तुम तीन बटे चार बनाकर अपने साथी को समझा दो।"

एक लड़के ने एक गोला बनाया, उसे चार हिस्सों में बांटा और तीन हिस्सों में रंग भरकर कहा "यह हो गया तीन बटे चार।"

बाकी दो लड़कों ने भी कहा, "हो गया तीन बटे चार।"

मैंने उन तीनों से पूछा, "यह तीन हिस्से रंगने का क्या मतलब है? यह तीन बटे चार कैसे हो गया?"

उन तीन लड़कों में से दो लड़के तुरंत अपनी
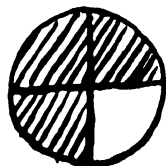
जगह पर लौट गए लेकिन एक लड़का खड़ा रहा। उस लड़के ने बताया, "तीन बटे चार यानी पचहत्तर प्रतिशत हो गया।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि बात प्रतिशत पर कैसे पहुंच गई। इसलिए मैंने पूछा, "यह कैसे पता चलेगा कि तीन बटे चार पचहत्तर प्रतिशत होता है?"

लड़के ने तुरंत ब्लैक बोर्ड पर मुझे समझाया

$3/4 \times 100 = 75\%$ और गोले पर बनाए 3/4 की ओर इशारा करके बोला, "यह 75% ही है। इसलिए मैंने ऐसा चित्र बनाया।"

मैंने बात आगे बढ़ाते हुए पूछा कि यदि तीन बटे चार पचहत्तर प्रतिशत होता है तो एक तिहाई, एक बटा दो, एक चौथाई और एक सही एक बटे चार कितने प्रतिशत होंगे और इन्हें चित्र से कैसे दिखा सकते हैं?

लड़के ने तुरंत ब्लैक बोर्ड पर लिखना शुरू किया–

$1/2 \times 100 = 50\%$

$1/4 \times 100 = 25\%$

$1/3 \times 100 = 33\%$

$1\frac{1}{\quad} \times 100 =$ – – –
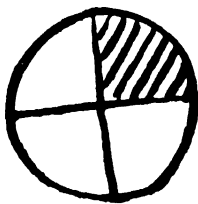
यहां वह कुछ रुककर सोचने लगा फिर बोला, " $1\frac{1}{4}$ कठिन है। मुझसे नहीं बनेगा।"

मुझे एक बात दिलचस्प लग रही थी कि लड़के ने 1/2, 1/4 के लिए तो गोले का इस्तेमाल किया लेकिन 1/3 के लिए चौकोन का। मैंने उससे पूछ ही लिया, "एक बटे तीन के लिए चौकोन का इस्तेमाल क्यों किया? गोले का भी तो कर सकते थे।"

लड़का थोड़ा चौंक-सा गया लेकिन फिर बोला, "एक बटे तीन ऐसे ही दिखाते हैं।"

मैंने फिर पूछ लिया, "अच्छा यह तो बताओ तुमने 1/2 के लिए गोले को आधा रंगा और 1/4 के लिए चौथाई हिस्सा ही क्यों रंगा?" लड़के ने सहजता से बताया, "जी, हमें प्रायमरी में 1/2, 1/4 बनाना ऐसे ही सिखाया गया था।"

मैंने उस लड़के को अपनी जगह जाकर बैठने के लिए कहा।

फिर पूरी कक्षा से पूछा, "अच्छा बताओ तीसरे प्रश्न में पूछा था $2\frac{1}{2}$ और 5/2 में से कौन-सा भिन्न बड़ा है? इसका सही उत्तर क्या है?"

सभी लड़कों ने एक स्वर में बताया, "जी दोनों भिन्न समान हैं।"

मैंने ब्लैक बोर्ड पर चित्र के रूप में दो भिन्न बनाई।

और पूछा, "ये दोनों भिन्न बराबर हैं या नहीं?" सभी ने बताया समान नहीं हैं।
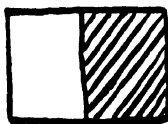
एक-दो ने बताया, "जी, आकार अलग-अलग है।"

मैंने फिर कोशिश की, "क्या तुम्हें ये दोनों भिन्न 1/2 जैसे नहीं लगते?"
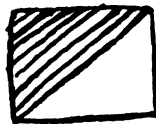
लेकिन लड़के चुप रहे। मैं चाहकर भी उनकी चुप्पी नहीं तोड़ पाया।

5/4 : गुत्थी नहीं सुलझ सकी

इस बार जिस स्कूल में टेस्ट पेपर लेकर पहुंचा वह ग्रामीण क्षेत्र का स्कूल कहलाता है। यहां भी दसवीं कक्षा में टेस्ट पेपर दिए। गणित के एक शिक्षक भी कक्षा में बैठना चाहते थे। वैसे मैंने उन्हें बताया कि इस टेस्ट पेपर का उद्देश्य शिक्षक का मूल्यांकन नहीं है। हम तो यह जानने की कोशिश कर रहे हैं कि विद्यार्थियों में भिन्न की समझ कहां तक विकसित हो सकी है।

टेस्ट पेपर शिक्षक की उपस्थिति में ही विद्यर्थियों ने हल किए। सभी से उत्तर पुस्तिकाएं लेकर मैंने शिक्षक से अनुरोध किया कि आप स्टाफ रूम में बैठिए, मैं लड़कों से टेस्ट पेपर के संबंध में कुछ चर्चा करना चाहता हूं।

उनके जाने पर मैंने लड़कों से बातचीत शुरू की।

मैंने सभी से पूछा, "तुम लोग पौन, सवा, आधा, चौथाई को बड़े से छोटे क्रम में क्यों नहीं जमा पाए। इस प्रश्न में क्या कठिनाई महसूस हुई?"

कुछ लड़कों ने तुरंत कहा कठिन नहीं था। लेकिन सामने की कतार में बैठी एक लड़की ने कहा, "जी सवा का मतलब समझ में नहीं आया।"

पीछे से एक लड़का चिल्लाया, "सवा का मतलब सरल है, सवा किलो, सवा पाव।"

एक दूसरा लड़का बोला, "सवा यानी एक सही एक बटा चार।" उसके पास बैठा एक और लड़का बोला, "सवा यानी पांच बटे चार।"

मुझे बात दिलचस्प लगी। मैंने ब्लैक बोर्ड पर $1\frac{1}{4}$ और 5/4 लिखा और पूछा, "यह लड़का कहता है सवा यानी $1\frac{1}{4}$ है और इसका साथी कहता है कि 5/4 सवा होता है क्या

ये दोनों सही हैं?"

सभी ने एक साथ कहा, "हां सर, दोनों सही हैं।"

मैंने कहा, "कोई बताएगा $1\frac{1}{4}$ किस तरह 5/4 होता है।"

एक लड़के ने तुरंत ब्लैक बोर्ड पर आकर बताया – चार एकम चार और यह एक जोड़ा, हो गए पांच यानी पांच बटे चार।

तभी एक लड़का बोला, "सर पांच बटे चार यानी 1.25 होता है।"

मैंने उसे ब्लैक बोर्ड के पास बुलाया और 1.25 कैसे बना बताने को कहा। उसने तुरंत हल करना शुरू किया –

$$4\,)\,\underset{4}{5}\,(\,1\frac{1}{4}$$

मैंने कहा, "भाई ऐसा भाग देते तो हमने कहीं नहीं देखा। हमेशा भाग न जाने पर दशमलव लगाना और शून्य बढ़ाते हुए ही देखा है।"

उसने तुरंत गलती सुधारकर लिखा–

4) 5 (1.25

```
 10
  8
-------
 20
 20
-------
 x x
```

और बोला, "5/4 हो गया न 1.25।"

मैंने कहा, "यह तो ठीक है, 5/4 का मतलब 1.25 हुआ लेकिन इसे चित्र के रूप में भी तो दिखाना है। क्या तुम बना सकते हो?"

लड़के ने तुरंत कहा, "1.25 को चित्र द्वारा बनाना तो कठिन है लेकिन 5/4 का चित्र बनाना सरल है।"

इतना कहकर वह लड़का अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। मैंने सभी से पूछा, "चलो 1.25 कठिन है लेकिन पांच बटे चार तो चित्र बनाकर दिखा सकते हैं। तुम लोगों में से जो कोई 5/4 बना सकता है यहां आकर बना जाए।"

एक लड़का आया उसने पांच बटे चार इस तरह बनाया:
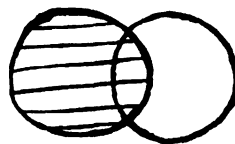
दूसरे लड़के ने कहा पांच बटे चार को बनाने के और भी तरीके हैं और उसने बनाया:
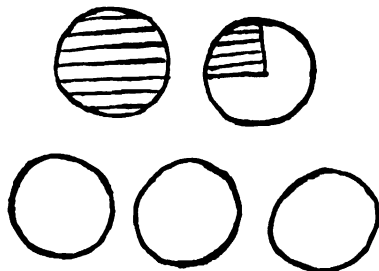
मैंने कक्षा के सभी लड़के-लड़कियों पर नज़र डालकर कहा, "क्या 5/4 बनाने के और भी तरीके हैं?"

तब एक लड़के ने ब्लैक बोर्ड पर आकर यह चित्र बनाया:
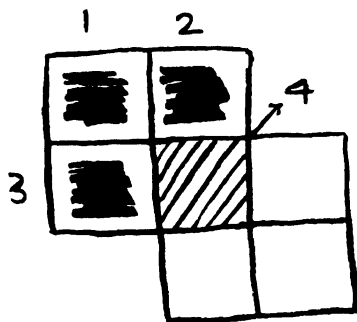
उसने बताया 5/4 का मतलब है चौकोन तो पांच होंगे लेकिन दिखाई देंगे सिर्फ चार। मैंने पूछा यह कैसे हो सकेगा। तो उसने बताया, "देखिए चौकोन 1, 2, 3 तो एक-एक हैं लेकिन चौकोन नंबर चार में दो चौकोन हैं लेकिन दिखाई सिर्फ एक ही दे रहा है?"

मैंने उसके तर्क पर कक्षा में राय मांगी। कुछ ने सहमति व्यक्त की। एक लड़के ने हाथ ऊंचा करके कुछ कहने की इजाज़त चाही। मैंने उससे बोलने के लिए कहा तो उसने बताया कि पांच बटे चार का चित्र बनाने का एक और तरीका है उसने ब्लैक बोर्ड पर चित्र बनाया:

मैंने उससे पूछा, "यह पांच बटे चार कैसे बना समझाओ तो भला।" लेकिन वह 'नहीं समझा सकूंगा' कहकर अपनी जगह पर चला गया। अब मुझे भी लगा कि इस कक्षा में पांच बटे चार की गुत्थी तो अब सुलझती नहीं लगती।
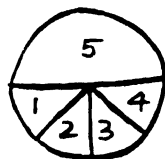
माधव केलकर – संदर्भ मे कार्यरत

यह रिपोर्ट उदयपुर (राजस्थान) के तीन स्कूलों में कक्षा 5वीं और 10वीं के विद्यार्थियों के बीच किए गए सर्वे पर आधारित है। यह सर्वे अभी हाल ही में किया गया।

ज़रा सिर तो खुजलाइए

अरे! इन चिड़ियों ने तो रबर की चप्पल भी नहीं पहनीं हैं, कितने आराम से बैठीं हैं बिजली के तारों पर, क्या इन्हें करंट नहीं लगता?

ज़रा कोशिश कीजिए, आपके पास भी इस सवाल का जवाब होगा। हमें लिख भेजिए, संदर्भ, द्वारा एकलव्य कोठी बाज़ार 461 001 के पते पर। सही जवाबों को हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

एक सबक़ जुगराफ़िये का

● इब्ने इंशा

जुगराफ़िया[1] में सबसे पहले यह बताया जाता है कि दुनिया गोल है। एक ज़माने बेशक यह चपटी होती थी, फिर गोल करार पायी गयी। गोल होने का फ़ायदा यह है कि लोग मशरिक़[2] की तरफ़ से जाते हैं, मग़रिब[3] की तरफ़ जा निकलते हैं। कोई उनको पकड़ नहीं सकता। स्मगलरों, मुजरिमों सियासतदानों के लिए तो बड़ी आसानी हो गयी है।

हिटलर ने ज़मीन को दोबारा चपटा करने की कोशिश की थी लेकिन वह कामयाब नहीं हुआ।

पुराने ज़माने में ज़मीन गुल मुहम्मद[4] की तरह साकिन[5] होती थी। सूरज और आसमान वग़ैरह उसके गिर्द घूमा करते थे। शायर कहता है, 'रात दिन गर्दिश में हैं, सात आसमान।' फिर गैलिलियो नामी एक शख़्स आया और उसने ज़मीन को सूरज के गिर्द घुमाना शुरू कर दिया। पादरी बहुत नाराज़ हुए कि यह हमको किस चक्कर में डाल दिया है। गैलिलियो को तो उन्होंने सज़ा देकर आइन्दा इस क़िस्म की हरकत से रोक दिया, ज़मीन को अलबत्ता नहीं रोक सके, बराबर हरकत किये जा रही थी।

शुरू में दुनिया में थोड़े ही मुल्क थे। लोग ख़ासी अमन-चैन की ज़िन्दगी बसर करते थे। पंद्रहवीं सदी में कोलम्बस ने अमरीका दरयाफ़्त[6] किया। उसके बारे में दो नज़रिये हैं – कुछ लोग कहते हैं कि उसका कसूर नहीं, वह हिन्दोस्तान को यानी हमको दरयाफ़्त करना चाहता था, मगर ग़लती से अमरीका को दरयाफ़्त कर बैठा। इस नज़रिये को इस बात से तक़वियत[7] मिलती है कि हम अभी तक दरयाफ़्त नहीं हो पाये।

दूसरा फरीक़ कहता है नहीं, कोलम्बस ने जानबूझकर यह हरकत की, यानी अमरीका दरयाफ़्त किया। बहरहाल अगर ये ग़लती भी थी तो बहुत संगीन ग़लती थी। कोलम्बस तो मर गया, उसका ख़ामियाज़ा हम लोग भुगत रहे हैं।

1 भूगोल 2 पूर्व 3 पश्चिम 4 गुल मुहम्मद शाह, कश्मीर के भू पू मुख्यमंत्री
5 स्थिर 6 आविष्कृत 7 बल

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित 'उर्दू की आखिरी किताब' से

माफ करें, आप एक स्कूल की व्यस्त प्रधानाध्यापिका हैं और आपको छुट्टी की अर्ज़ियों जैसी चुस्त चिट्ठियां पढ़ने की आदत है। पर एक कलाकार को बहकने की

मिसेज डिसूज़ा के नाम

• **अलका सरावगी**

आदत पड़ ही जाती है, जीवन को एक नए सिरे से समझने-जानने के लिए इधर-उधर भटकना उसकी लगभग मजबूरी होती है कि न जाने कहां क्या मिल जाए। इसलिए थोड़ी छूट मैं आपसे ज़रूर चाहूंगी॥

प्रिय श्रीमती डिसूज़ा,

अचानक बैठे-बैठे मेरा मन हुआ कि आपको पत्र लिखूं, हालांकि कल आपसे मिलने के बाद अब तक मेरे दिमाग में ऐसा कोई ख्याल ही नहीं था। मुझे लगता है कि लिखे हुए शब्द बोले हुए शब्दों से ज़्यादा सच बोल पाते हैं.....कल आपसे बातें करते हुए मैंने महसूस किया कि मेरे शब्द अपने आप बदल जाते थे..... यहां तक कि कई बार मैं बोलना कुछ और चाह रही थी, पर बोले कुछ और जा रही थी। दरअसल कुछ छिपा लेने की कोशिश से बचना आमने-सामने बैठे हुए काफी मुश्किल होता है और साथ-ही-साथ यह कोशिश भी तो जारी रहती है कि हम भांप लें कि सामने वाला हमसे क्या सुनना चाहता है। लिखते वक्त तो सिर्फ अपने से टकराना होता है....।

माफ करें, आप एक स्कूल की व्यस्त प्रधानाध्यापिका हैं और आपको छुट्टी की अर्ज़ियों जैसी चुस्त चिट्ठियां पढ़ने की आदत है। पर एक कलाकार को बहकने की आदत पड़ ही जाती है, जीवन को एक नए सिरे से समझने-जानने के लिए इधर-उधर भटकना उसकी लगभग मजबूरी होती है कि न जाने कहां क्या मिल जाए। इसलिए थोड़ी छूट मैं आपसे ज़रूर चाहूंगी।

वंदिता – मेरी छह साल की चुलबुली बेटी। कितना जीवन है उसमें। मैं उसे देखती जाती हूं और सोचती हूं कि बड़े होने पर यह आनंद कहां गुम हो जाता है? क्यों हम इतने गंभीर, इतने उदास, इतने शुष्क होते जाते हैं? पर आप कहती हैं कि उसे ऐसा नहीं होना चाहिए। वह बहुत शैतान है.....किसी की बात नहीं सुनती.....पूरी कक्षा को 'डिस्टर्ब' करती है.....बहुत बातूनी है.....पढ़ाई में ध्यान नहीं देती। इतना ही नहीं, आपका ख्याल है कि इसका कारण मैं ही हूं.....मैं अपने संगीत के कार्यक्रमों में व्यस्त रहती हूं.....उस पर पूरा ध्यान नहीं देती.....इसीलिए वह सबका ध्यान अपनी तरफ खींचने के लिए ही इतनी शैतानियां करती है। आह! कितनी आसानी से आप एक-के-बाद एक आरोप मुझ पर लगाती जाती हैं.....आपकी काले फ्रेम के चश्मे में से झांकती सिलवटों से घिरी आंखें जैसे मेरे आर-पार चली जाती हैं.....आप अपने निकाले हुए निष्कर्ष मेरे मुंह से सुनना चाहती हैं.....आप 'कनफेशन' चाहती हैं.....और लीजिए मेरी आंखों में आंसू डबडबा आते हैं। मैं जानती हूं कि आप इन्हें पश्चाताप के आंसू समझ रही हैं। आपके चेहरे पर आत्मसंतोष आकर आपकी तनी हुई रेखाओं को ढीला कर देता है। मैं आपको अपने आंसुओं का राज़ नहीं बताती.....उनके कारण ही मुझे आपसे मुक्ति मिल जाएगी, यह समझकर चुप रहती हूं।

चुप तो आजकल मैं अक्सर रहती हूं, मिसेज डिसूज़ा। क्योंकि मैंने देख लिया है कि किसी को कुछ समझाने का अर्थ है

कि आप एक सस्ते किस्म की अखाड़ेबाज़ी में उतरकर अधिक-से-अधिक नंबर लेने की चेष्टा करें। मुश्किल तो यह है कि कितने भी नंबर आप ले लें, तकलीफ कम नहीं होती..... और जितना नज़दीक का व्यक्ति हो, तकलीफ उतनी ही अधिक होती है। इसीलिए अभी उस दिन मैंने अपनी बहन नीलिमा से भी कुछ नहीं कहा। नीलिमा ने वंदिता की स्कूल की डायरी देखकर मुझसे कहा, "दीदी, तुम बुरा मत मानना, पर क्या तुम्हें बुरा नहीं लगता कि वंदिता की डायरी में दो जगह लिखा है कि वह कविता याद करके नहीं आई और एक जगह लिखा है कि वह कलर-पेंसिल नहीं लाई।" मैं उसे कैसे समझाती, मिसेज डिसूज़ा कि दस महीने में तीन बार की भूल बाकी दिनों की मेहनत को बेकार नहीं कर सकती। मन तो मेरा हुआ कि उससे कहूं, 'नीलिमा क्या तुम उन अलिखित शिकायतों का ब्योरा भी रखती हो, जो तुम्हारा मन तुमसे रोज़ करता होगा....' 'अगर मैं अपने सितार को शादी के बाद ताक पर न रख देती, तो क्या पता मैं....।' पर मैं चुप रही। मैं उससे उसकी यह खुशी नहीं छीनना चाहती थी कि उसके बच्चे की डायरी में कोई शिकायत कभी नहीं लिखी गई।

ऐसा क्यों होता है मिसेज डिसूज़ा? आप लोग सब मुझे क्यों बार—बार कठघरे में खड़ा करना चाहते हैं? क्यों मेरे इर्द-गिर्द के लोग मुझे हर वक्त बताते रहते
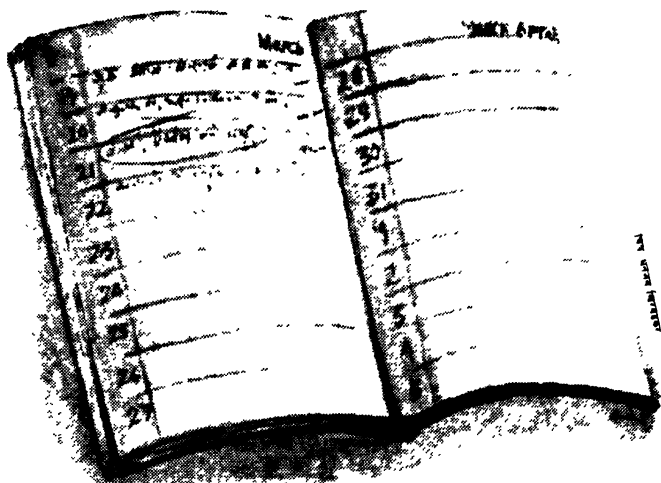
हैं कि फलां औरत अपने बच्चे के पीछे दो घन्टे तक खाना लिए-लिए घूमती रहती है क्योंकि वह खाना नहीं चाहता.....फलां औरत अपने पांच साल के बच्चे को चार घंटे पढ़ाती है....। क्या आप भी औरों की तरह यही सोचती हैं कि औरतों को अपने लिए जीने का कोई अधिकार नहीं? क्या मेरे जीवन में वंदिता और संगीत एक साथ नहीं रह सकते? क्यों नहीं रह सकते, मिसेज डिसूज़ा..... मेहनत मुझे करनी होती है, परेशानी मुझे होती है – किसी और को उससे क्या मतलब है? वंदिता जब कभी बीमार होती है, तो क्यों सब मुझे अजीब-सी निगाहों से देखने लगते हैं? यहां तक कि वंदिता के पापा भी मुझे कहते हैं कि उसका ध्यान रखना.....जैसे कि यदि वे नहीं बोलेंगे तो मैं ध्यान नहीं रखूंगी। औरों की तो छोड़िए, आपने कितनी आसानी से निष्कर्ष निकाल लिया कि सारी मुसीबतों की जड़ मेरा संगीत है.. . . . जबकि आप दाखिले के समय इंटरव्यू में कितनी खुश हुई थीं यह सुनकर कि मैं रेडियो की नामी कलाकार हूं। मुझे लगता है, मिसेज डिसूज़ा कि सब लोग नतीजे तो चाहते हैं, उन पर पीठ भी
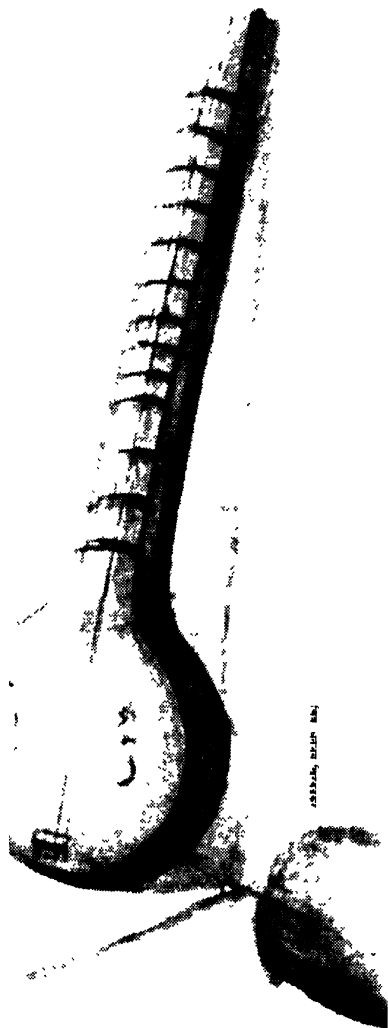
थपथपाते हैं, उन नतीजों तक पहुंचने के लिए जो यात्रा करनी होती है, उनमें कांटे बिछाने से नहीं चूकते।

कभी-कभी जब मैं बहुत थक जाती हूं, मिसेज डिसूज़ा, तब मैं अपने आत्मसम्मान को भूलकर यह बात सफाई के तौर पर कह डालती हूं कि मेरे लिए वंदिता से अधिक महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। मैं कल आपको भी कह ही देती, पर मैं इतनी स्तब्ध हो गई थी कि आपको यह भी नहीं कह सकी। दो-तीन साल पहले यह बात किसी से कहना मुझे अपमानजनक लगता था, पर मैंने देखा कि इस तरह की बात सुनने से लोगों को तसल्ली मिल जाती है। सचमुच मेरे लिए वंदिता से महत्वपूर्ण कुछ नहीं है.....लेकिन मिसेज डिसूज़ा, आप सोचिए कि हम अपने बच्चों के लिए कितने [illegible]ांक्षी हैं.....उन्हें कुछ बताने के लिए कितनी तपस्या करते हैं.....एक दिन बच्चा कविता याद न करे तो हमें लगता है कि उसकी दुनिया अंधकारमय हो जाएगी.....लेकिन यदि हम अपनी प्रतिभा, अपनी ऊर्जा का कुछ उपयोग नहीं करते, तो हम अपने बच्चों को कैसे सिखाएंगे कि जीवन नष्ट करने के लिए नहीं है? इस तरह तो हम उन्हें अधिक-से-अधिक अपने बच्चों के लिए महत्वाकांक्षी होना ही सिखाएंगे। आप सच मानिए, मैंने सब लोगों की निगाहों को झेलत-झेलते भी यह विश्वास बनाए रखा है कि वंदिता जीवन को पूरी तरह जीने की मेरी इच्छा और संघर्ष से ज़रूर प्रेरणा लेगी। मुझे हमेशा लगा है कि मेरा अपना संघर्ष भी उसकी शिक्षा और संस्कार का ही एक हिस्सा है।

माफ कीजिएगा, मिसेज डिसूज़ा, शायद आपको लग रहा होगा कि मैं अपनी खामियों को छिपाने के लिए कितने तर्क जुटा रही हूं। हां, खामियां तो रह ही जाती हैं.....चाहते तो हम सब यही हैं कि जीवन इस तरह से पूर्ण और चरम उत्कृष्ट हो, लेकिन किस कीमत पर? न जाने कहां-कहां से छोटे-छोटे सैकड़ों काम निकल आते हैं – वंदिता के मोज़ों में इतनी जल्दी-जल्दी छेद हो जाते हैं.....स्कूल की फीस भरने का समय कितनी जल्दी-जल्दी आ जाता है.....उसके बाल लम्बे होकर आंखों में आने लगते हैं – इनके अलावा रोज़ाना के तो पचीसों काम हैं ही। किसी काम को टाला नहीं जा सकता.....कई बार मैं यह सोचने लगती हूं, मिसेज डिसूज़ा कि छिटपुट कामों को आखिर हम इतना महत्व देते ही क्यों हैं – क्यों हम इस तरह के कामों को टाल नहीं पाते.....क्यों वंदिता के घिसे हुए जूतों को देख मां मुझे इस तरह देखने लगती है?

अभी उस दिन पार्क में वंदिता के हमउम्र जो गरीब बच्चे खेल रहे थे, उनके कपड़ों का एक ही रंग था – बदरंग या मटमैला। मैं सोचती रही कि ये बेचारे बिना कलर-पेन्सिलों के कैसे रंगों की पहचान सीखते हैं.....आप बताइए, मिसेज डिसूज़ा, ज़रूरी और गैरज़रूरी में कैसे फर्क होता है? मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता।

समझ में तो खैर मुझे और भी बहुत कुछ नहीं आता, जैसे कि मुझे यह भी

समझ नहीं आता कि इतने हंसने-खिलखिलाने वाले शैतान बच्चों के बीच रहकर भी आप इतनी गंभीर कैसे रहती हैं.....कई बार तो मुझे आपको देखकर ऐसी घबराहट होती है कि मुझे अपने को याद दिलाना पड़ता है कि मैं आपकी छात्रा नहीं, बल्कि एक छात्रा की मां हूं। आप बुरा मत मानिएगा, मिसेज डिसूज़ा, लेकिन क्या आपको यह खतरा नहीं लगता कि आपको इस तरह देखकर कहीं बच्चे यह समझ लें कि ज़िन्दगी ऐसी मनहूस चीज़ है कि मुस्कराना बहुत कठिन है।

एक और बात जो मेरी समझ में नहीं आती, मिसेज डिसूज़ा कि बच्चों के उठने-बैठने, खेलने-खाने में अनुशासन के नाम पर इतनी सेंसरशिप लगाना कहां तक उचित है.....हम बच्चों को जल्दी अपने जैसा क्यों बना लेना चाहते हैं.....आखिर हम कैसी दुनिया के लिए उन्हें तैयार कर रहे हैं.....कभी-कभी तो मुझे लगता है कि हम भविष्य से बेतहाशा डरे हुए हैं। इसलिए हम अपने बच्चों को सब-कुछ सिखाकर हर तरह से तैयार करना चाहते हैं ताकि वे ज़िन्दगी की दौड़ में पीछे न रह जाएं। लेकिन न जाने क्यों मिसेज डिसूज़ा मुझे लगता है कि हमारे बच्चे और सब बातों के साथ हमसे यह डर भी सीख लेंगे। ज़रा सोचिए मिसेज डिसूज़ा, हम अपनी सारी ऊर्जा बच्चों के सहज, निर्दोष आनंद को नष्ट करने में तो नहीं लगा रहे? मेरी एक सहेली अब बहुत खुश है कि उसका लड़का नए स्कूल में आने के बाद बदल गया है.....पहले कोई उसे मार देता था, तो वह चुपचाप सह लेता था – कोई उससे कुछ मांग लेता, तो वह बिना सोचे-समझे अपनी चीज़ पकड़ा देता था। मेरी सहेली अक्सर कहा करती थी, "ऐसा नरम दिल है, न जाने कैसे इसकी ज़िन्दगी चलेगी।" अब नए स्कूल में टीचर ने सिखाया है कि 'कोई तुम्हें एक थप्पड़ मारे, तो तुम उसे चार थप्पड़ मारो।' आपका क्या ख्याल है मिसेज डिसूज़ा? क्या सचमुच आपको लगता है कि आगे की दुनिया ऐसी भयानक होगी जहां सारे गुण-अवगुण माने जाने लगेंगे?"

माफ कीजिएगा, मिसेज डिसूज़ा, कहीं मैं ज़रूरत से ज़्यादा तो नहीं बहक रही? लेकिन आपसे बातें करने के बहाने मैं इस दुनिया को समझने की कोशिश कर रही हूं.....पता नहीं, लोग कैसे अपने बारे में इतना विश्वास रख पाते हैं कि वे जो बोल रहे हैं, वह बिल्कुल सही है। मुझे तो हमेशा अपनी बात पर संदेह रहता है कि क्या पता यह उतनी सच न हो जितनी कि मैं समझ रही हूं। वंदिता जब भी मेरा गाना सुनती है, हमेशा लेट जाती है। मैंने जब शुरू में उसे टोका कि वह उठकर सुने, तो उसने पूछा, 'क्यों?' मैं इस 'क्यों' का कोई अच्छा-सा जवाब खोज नहीं पाई। क्या मालूम, हम जीने के जिन तरीकों को सही मानते हैं, वे

सही हैं या गलत.....आखिर तो ज़िन्दगी इतना बड़ा रहस्य है.....उसे जान पाना क्या इतना आसान है.....जो कहीं सही है, वही कहीं गलत है.....और फिर जैसी दुनिया में हम जी रहे हैं, उसे देखकर तो यह विश्वास करना और भी कठिन है कि हमारे तरीके सही हैं। कितनी दूरी है आदमी और आदमी के बीच में – कहीं रंग, कहीं धर्म, कहीं पैसा.....क्या सारी शिक्षा-दीक्षा, सभ्यता का अंतिम लक्ष्य उस चरम करुणा को पा लेना ही नहीं है जहां आदमी को दूसरे की पीड़ा अपनी पीड़ा जैसी लगने लगे? लेकिन ऐसा होता कहां है, मिसेज डिसूज़ा? अभी कुछ दिन पहले वंदिता ने मुझसे कहा, "मम्मी, यह राहुल मेरा छोटा भाई नहीं है, यह तो मेरा 'कज़िन' है।" राहुल वहीं खड़ा-खड़ा उसे ताक रहा था। मैं एक क्षण तो चुप रही कि उसे क्या कहूं। फिर मैंने उससे कहा, "यह कज़िन-वज़िन स्कूल में पढ़ने के लिए होता है। असल में हम जिसे प्यार करते हैं, वह हमारा अपना ही होता है। उसे 'कज़िन' नहीं कहते। राहुल तुम्हारा ही भाई है।" यह सुनकर वंदिता के चेहरे पर बहुत राहत दिखाई दी और वह राहुल का हाथ पकड़कर खेलने के लिए भाग गई।

मैं अब आपका ज़्यादा वक्त नहीं लूंगी, मिसेज डिसूज़ा! मैं सिर्फ आपसे इतना ही कहना चाहती थी मिसेज डिसूज़ा कि

अभी तक हम लोग जीवन को सही ढंग से जीने का 'फार्मूला' नहीं पा सके हैं.....जब तक हम उस नुस्खे को नहीं पा लेते जिससे हम इस दुनिया को एक बेहतर दुनिया बना सकें, तब तक हमें अपने प्रति एक संदेह भाव रखना ही होगा, हमें यह मानकर चलना होगा कि हम गलत भी हो सकते हैं। मेरी सहेली आभा अपनी मां के लगभग सैनिक अनुशासन में पलकर बड़ी हुई — फोन की घंटी दो बार से अधिक नहीं बजनी चाहिए, हर बात को एक बार में समझ लेना चाहिए, किसी चीज़ को लाने के लिए जो दराज़ खोलना बताया गया हो, उसके अलावा कोई दराज़ नहीं खुलना चाहिए। आभा में मानसिक सतर्कता और कम ऊर्जा में अधिक काम करने की क्षमता तो ज़रूर विकसित हुई, पर उसके अंदर जैसे सारे प्रश्न समाप्त हो गए.....वह एक भावहीन चेहरा लिए पति की आज्ञानुसार जीवन बिता रही है। अपनी ओर से कोई मज़ाक करना तो दूर, किसी हंसने की

बात पर वह हंसती नहीं। ऐसा लगता है जैसे उसके अंदर कुछ जमकर ठोस हो गया हो। उसे देखकर मुझे लगता है, मिसेज डिसूज़ा कि बहुत अधिक समय का पाबंद होने की कोई ज़रूरत नहीं होती.....हर समय किसी काम में लगे रहने की भी कोई ज़रूरत नहीं होती और न ही यह हिसाब लगाते रहने की कि किस काम से क्या फायदा होगा। इस डर के बावजूद कि आप मुझे सनकी और पागल समझ लेंगी, मैं आपको बताना चाहूंगी कि मैंने तो पाया है कि जीवन में आलस, फुरसत और निकम्मापन भी कुछ मात्रा में होना ज़रूरी है.....ताकि आप रुककर देख सकें कि आप आखिर कहां जा रहे हैं। बस, इतना ही मैं आपसे कहना चाहती थी — मिसेज डिसूज़ा। पूरी तरह सच को तो कौन जान पाया है।

आपकी

सुस्मिता गुप्ता

यह कहानी, कहानी संकलन 'नौकरीपेशा नारी — कहानी के आईने में' से साभार।

किताब — नौकरीपेशा नारी कहानी के आईने में

प्रकाशक — सामयिक प्रकाशन
3543, जटवाड़ा
दरियागंज
नई दिल्ली — 110 002

स्वामी और गणित का सवाल

● आर. के. नारायण

•••स्वामीनाथन अपने पिताजी के कमरे में, हाथ में स्लेट और पेन्सिल लिए कुर्सी पर तैयार बैठा था। पिताजी ने गणित की किताब खोली और एक सवाल लिखवाया, "राम के पास दस आम हैं जिनसे वो पन्द्रह आने कमाना चाहता है। किशन को केवल चार आम चाहिए। किशन को कितने पैसे देने पड़ेंगे?"

स्वामीनाथन सवाल की तरफ घूरने लगा। वो उसे जितनी बार भी पढ़ता, सवाल उसके लिए एक नया ही मतलब ले लेता। उसे ऐसा एहसास हो रहा था जैसे वो एक डरावनी भूल-भुलैयां में फंसता जा रहा हो।

आमों के बारे में सोचकर उसके मुंह में पानी आने लगा। स्वामी सोचने लगा कि राम ने आखिर दस आमों का दाम पन्द्रह आने क्यों तय किया होगा? किस तरह का आदमी था राम? शायद वो उसके दोस्त शंकर जैसा ही होगा। उसके बारे में सुनकर ही ऐसा लगता है कि वो शंकर जैसा ही रहा होगा, अपने दस
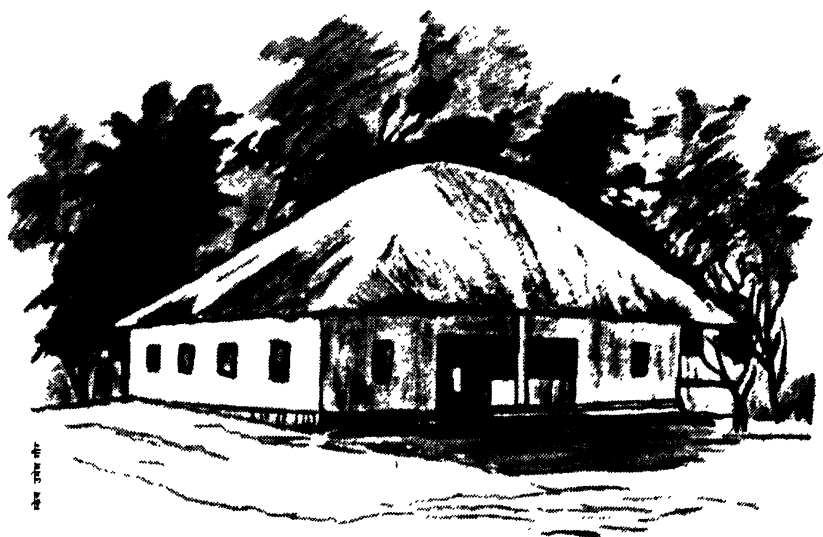
आम और उनसे पन्द्रह आने कमाने के दृढ संकल्प के साथ। अगर राम, शंकर की तरह था तो किशन बेचारा उसके दूसरे दोस्त की तरह होगा जिसे सब 'मटर' कहकर पुकारते थे। यह सोच स्वामीनाथन में किशन के प्रति जाने क्यों एक दया की भावना उमड़ पड़ी।

"क्या तुमने सवाल हल कर लिया?" पिताजी ने अखबार के ऊपर से झांकते हुए पूछा।

"पिताजी, यह बताइए क्या वो आम पके हुए थे?"

पिताजी ने थोड़ी देर उसको गौर से देखा और अपनी मुस्कान दबाते हुए बोले, "पहले सवाल कर लो। यह मैं तुम्हें बाद में बताऊंगा कि फल पके थे या नहीं।"

स्वामीनाथन अब बहुत ही असहाय महसूस कर रहा था। पिताजी केवल यही बता देते कि राम पके हुए फल बेचने की कोशिश कर रहा था या कच्चे वाले। बाद में पता चलने से उसको इस जानकारी से क्या हासिल होगा, भला? उसको पक्का विश्वास हो गया था कि इस मुद्दे में ही सारे फसाद का हल था। दस कच्चे आमों के लिए पन्द्रह आनों की अपेक्षा करना ही सरासर अन्याय था। पर अगर वो ऐसा कर भी रहा था तो यह राम के व्यक्तित्व के काफी अनुकूल लग रहा था, जिसे स्वामीनाथन अब काफी नफरत की दृष्टि से देखने लगा था और दुनिया की सारी बुराईयों से भरा हुआ पा रहा था।

"पिताजी, मैं यह सवाल नहीं कर सकता।" स्वामीनाथन स्लेट को दूर सरकाते हुए बोला।

"आखिर तुम्हारी समस्या क्या है? क्या तुम सरल अनुपात का एक आसान-सा सवाल भी हल नहीं कर सकते?"

"हमें स्कूल में इस तरह की चीज़ नहीं सिखाई जाती।"

"चलो स्लेट इधर लाओ। मैं अब तुमसे ही जवाब निकलवाऊंगा।"

स्वामीनाथन उत्सुकता के साथ इस चमत्कार की प्रतीक्षा करने लगा। पिताजी ने सवाल को क्षण भर के लिए निहारा और स्वामीनाथन से पूछा, "दस आमों का दाम क्या होगा?"

स्वामीनाथन ने सवाल पर फिर से नज़र दौड़ाई, यह पता लगाने के लिए कि सवाल के किस भाग में इस प्रश्न का जवाब छिपा था।

"मुझे नहीं मालूम।"

"तुम अव्वल नंबर के मूर्ख मालूम होते हो। सवाल को ध्यान से पढ़ो। चलो, बताओ राम दस आमों के लिए कितने पैसे मांग रहा है।"

'ज़ाहिर है, पन्द्रह आने' स्वामीनाथन ने सोचा, परन्तु इतना दाम उचित दाम कैसे हो सकता था? राम के लिए तो लालच में आकर इतने की अपेक्षा करना ठीक था। पर क्या यह सही दाम था? और ऊपर से यह बात भी तो अस्पष्ट थी कि आम पके थे या कच्चे। अगर वो पके हुए थे तो पन्द्रह आने अनुचित मूल्य नहीं था। काश, केवल इस विषय पर थोड़ा और प्रकाश पड़ जाता!

"कितने पैसे चाहिए राम को अपने आमों के लिए?"

"पन्द्रह आने।" स्वामीनाथन ने बिना आत्मविश्वास धीरे-से जवाब दिया।

"शाबाश! अब बताओ किशन को कितने आम चाहिए?"

"चार।"

"चार आमों का दाम क्या होगा?"

लग रहा था कि पिताजी को उसे सताने में काफी मज़ा आ रहा था। पर वह कैसे पता करे कि वो बेवकूफ किशन कितने पैसे देगा?

"देखो लड़के, मेरा मन तो कर रहा है कि तुम्हें पीट दूं। क्या भूसा भरा है तुम्हारे दिमाग में? दस आमों का दाम अगर पन्द्रह आने है तो एक का दाम क्या होगा? चलो, जल्दी बताओ। अगर नहीं बताओगे तो..." उन्होंने स्वामीनाथन का कान पकड़ा और उसे हल्के से मरोड़ा। स्वामीनाथन बेचारा तो अपना मुंह इसलिए नहीं खोल पा रहा था क्योंकि उसे इस बात का कतई भी इल्म न था कि सवाल का जवाब आखिर है कहां – जोड़ में, घटा में, गुणा में या फिर भाग में। जितना समय वो हिचकने में लगा रहा था उतना ही उसके कान पर ज़ोर बढ़ता चला जा रहा था। अंत में भौहें ताने हुए पिताजी को जवाब में अपने लड़के से एक सिसकी ही सुनाई दी।

"मैं तुम्हें तब तक नहीं छोडूंगा जब तक तुम मुझे यह नहीं बताओगे कि एक आम का दाम क्या होगा, अगर दस का दाम पन्द्रह आने है।"

क्या हुआ है पिताजी को? स्वामीनाथन अपनी आंखें झपकता रहा। आखिर ऐसी जल्दी भी क्या थी दाम पता लगाने की। खैर फिर भी अगर उन्हें इतना ही उतावलापन था तो उसे परेशान करने के बजाय बाज़ार जाकर पता लगा

लेते। दुनिया के सारे राम और किशनों का, आम की बेतुकी संख्याओं और पैसों के भाग के साथ अंतहीन लेन-देन अब काफी वीभत्स हो चला था।

पिताजी ने अपनी हार स्वीकार करते हुए ऐलान किया, "एक आम का दाम है पन्द्रह बटे दस आने। अब इसे हल करो।"

यहां स्वामीनाथन गणित के सबसे पेचीदा खाइयों की तरफ ले जाया जा रहा था — यानी भिन्न संख्याओं के आधार पर सोचने के लिए उसे मजबूर किया जा रहा था।

"पिताजी, लाओ मुझे स्लेट दो। मैं अभी पता लगाता हूं।" उसने दिमाग लगाया और पन्द्रह मिनट पश्चात यह पता लगाया: "एक आम का दाम है तीन बटा दो आने।" उसे किसी भी क्षण गलत साबित होने की पूरी संभावना लग रही थी। परन्तु पिताजी बोले, "बहुत अच्छे। अब इसे और आगे हल करो।" उसके बाद तो सब कुछ बहुत सहज हो गया। स्वामीनाथन ने एक और कष्टदायक आधा घंटा बिताने के बाद जवाब दिया: "किशन को छह आने देने पड़ेंगे।" यह कहते ही वो फूट-फूट के रोने लगा।

आर. के. नारायण की किताब 'स्वामी एण्ड हिज़ फ्रेंड्स' के ग्यारहवें अध्याय के एक अंश का अनुवाद। मूल किताब अंग्रेज़ी में। अनुवाद - पल्लवी कुमार।

सूर्य ग्रहण के समय कुछ देखने लायक नज़ारे

1. **संपर्क बिन्दु:** सूर्य ग्रहण की शुरूआत के समय और खत्म होने पर जहां सूर्य और चंद्रमा हमें एक-दूसरे को छूते हुए नज़र आते हैं, वे बिन्दु। ग्रहण की ठीक-ठीक अवधि का पता तो चलता ही है इनसे, पर उसके अलावा भी और बहुत-से अवलोकनों के लिए इनका महत्त्व होता है।
2. **परछाई की पट्टियां:** पूर्ण सूर्य ग्रहण के थोड़ा पहले और बाद में पृथ्वी की सतह पर परछाई और रोशनी की पट्टियां नज़र आती हैं। पृथ्वी के वायुमंडल की विभिन्न परतों के घनत्व में अंतर की वजह से ये पट्टियां दिखाई देती हैं।
3. **मोती जैसी रचनाएं:** पूर्ण सूर्य ग्रहण से ठीक पहले या ग्रहण के दौरान या फिर ग्रहण खत्म होते वक्त अगर सूर्य की किरणें चंद्रमा की किन्हीं खाइयों-घाटियों में से निकलकर हम तक पहुंच रही हों

तो वे मोतियों जैसी चमकती दिखाई देती हैं। कई बार ऐसा लगता है मानो चमकीले हार में मोती पिरो दिए गए हों। (बेली नाम के अंग्रेज़ खगोल शास्त्री ने सबसे पहले इनकी तरफ सबका ध्यान आकर्षित किया था, इसलिए इन्हें बेली के मोती भी कहा जाता है।)

4. **गोल चमकते छल्ले:** पूर्ण ग्रहण के तुरंत बाद जैसे ही सूरज चांद के पीछे से बाहर झांकता है, तो चमकते छल्ले की तरह नज़र आता है।

5. **तारे और ग्रह:** सूर्य के ढक जाने के कारण दिन में भी बहुत सारे तारे और ग्रह दिखेंगे।

6. **सौर लपटें:** सूर्य में से लगातार लम्बी-लम्बी ज्वालाएं बाहर की तरफ निकलती रहती हैं। ये लपटें अतरिक्ष में लाखों किलोमीटर दूर तक उठती हैं। कोरोना में से निकलती हुई ऐसी अग्नि ज्वालाएं पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय दिखाई देंगी।

7. **कोरोना:** लाखों किलोमीटर तक फैला सूर्य का वातावरण भी पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय ओजस्वी प्रभामंडल जैसा दिखाई देगा। सामान्य स्थितियों में सूर्य के तेज़ प्रकाश के कारण सूर्य का यह वातावरण नज़र नहीं आता।

खग्रास सूर्य ग्रहण देखने का मौका ज़िंदगी में बहुत बार नहीं आता इसलिए इस साल दीवाली के दिन होने वाले इस ग्रहण के दौरान इस अद्भुत नज़ारे को ध्यान से देखने की कोशिश ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग करेंगे ही। उत्साह तो होता ही है ऐसी किसी घटना के बारे में, पर साथ ही सूर्य ग्रहण देखते समय कुछ सावधानियां बरतने की भी ज़रूरत होती है।

वैसे भी चमकते हुए सूर्य की तरफ देखना आंखों के लिए घातक होता है – ऐसे फिल्टर इस्तेमाल करते हुए देखना चाहिए जिनसे सूर्य से आने वाली पराबैंगनी, अवरक्त और दृश्य किरणों की तीव्रता एकदम कम हो जाए। अगर सूर्य की इन किरणों का केवल एक लाखवां हिस्सा ही पहुंचे तो हमारी आंखें सुरक्षित रहती हैं।

इसी तरह सूर्य ग्रहण देखते समय भी सावधानी बरतने की ज़रूरत है – खासतौर पर पूर्ण सूर्य ग्रहण के पहले और बाद में सूर्य की तरफ देखते वक्त। अच्छी तरह से एक्सपोज़ की हुई एक्स-रे या कैमरा फिल्म की दो-दो पट्टियां भी इस्तेमाल की जा सकती हैं।

परन्तु यह ज़रूरी नहीं कि ये आंखों को एकदम सुरक्षित रख पाएं क्योंकि एक्सपोज़ करते वक्त रह जाने वाले बहुत से बारीक छिद्रों में से भी पराबैंगनी किरणें गुज़र सकती है। इनसे कहीं ज़्यादा सुरक्षित होती है पॉलीमर की पारदर्शक पट्टी। जिसके दोनों तरफ एल्युमिनियम का एकदम पतला लेप किया हो या पतली परत चढ़ाई हो। सुरक्षित रूप से सूर्य ग्रहण देखने के लिए विशेष प्रकार की पट्टियां और चश्मे भी अक्सर तैयार किए जाते हैं।

सूर्यग्रहण के बारे में अधिक जानकारी के लिए आप इस पते पर संपर्क कर सकते हैं:

खगोल मंडल

द्वारा श्री. नंदकुमार वालवे

ए-9 गुरूप्रसाद, स्वास्तिक पार्क, चेंबुर

मुंबई (महाराष्ट्र),

पिन: 400071

स्रोत: फिज़िक्स एजुकेशन, जुलाई-सितम्बर, 1995

एकलव्य के प्रकाशन
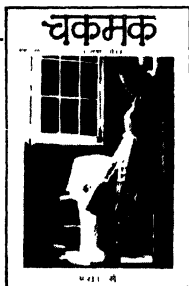
चकमक - मासिक बाल विज्ञान पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रुपए, डाकखर्च मुफ्त (पुराने सजिल्द अंक उपलब्ध)

संदर्भ - शैक्षिक विषयों पर केंद्रित शिक्षकों की द्वैमासिक पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क 35 रुपए (6 अंक)
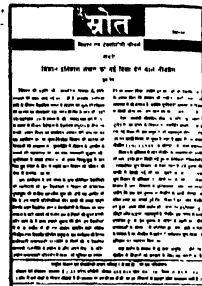
स्रोत - विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी फीचर सेवा, मासिक पत्रिका के रूप में भी उपलब्ध, वार्षिक सदस्यता शुल्क 100 रुपए (संस्थाओं के लिए 200 रुपए)
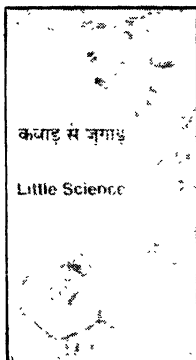
कबाड़ से जुगाड़ - आसपास बिखरे पड़े बेकार सामान से विज्ञान के प्रयोग करने और समझने की पुस्तिका, पृष्ठ - 68, मूल्य 10.00 रुपए, डाक से 11.00 रुपए

खिलौनों का बस्ता - कबाड़ से जुगाड़ की तर्ज़ पर कुछ नए प्रयोगों और मॉडलों की किताब, पृष्ठ - 68, मूल्य - 10.00 रुपए डाक से 11.00 रुपए

खेल खेल में

खेल खेल में - माचिस की तीलियों, डिब्बी और वॉल्व ट्यूब जैसी चीज़ों से विज्ञान के कुछ सस्ते, सरल और रोचक मॉडल बनाने की जानकारी, मूल्य 8.00 रुपए, डाक से 9.00 रुपए

बोल अरी ओ धरती बोल - छात्रों के एक समूह 'प्रतिध्वनि' द्वारा संकलित गीत। ऐसे गाने जिनमें गांव की मिट्टी का सोंधापन है, लोगों के अरमान हैं, उनकी खुशी है, एक उम्मीद है, जीवन है।
मूल्य 5.00 रुपए, डाक से 6.00 रुपए
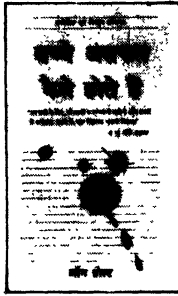
बच्चों के मन में स्कूल को लेकर इतना भय क्यों है? क्या कारण है कि वे अपनी सामर्थ्य का एक छोटा-सा हिस्सा ही स्कूलों में विकसित कर पाते हैं। ऐसे ही कई सवालों को लेकर लिखी गई प्रसिद्ध शिक्षाविद् जॉन होल्ट की किताब 'हाउ चिल्ड्रन फेल' का हिंदी रूपांतरण - 'बच्चे असफल कैसे होते हैं" पृष्ठ - 283, मूल्य पेपरबैक - 40.00 रुपए (डाक से 50.00 रुपए), सजिल्द - 100 रुपए (डाकखर्च सहित)

एकलव्य के शैक्षिक प्रयोगों में विकसित सामग्री

बाल वैज्ञानिक कक्षा 6, 7 और 8 होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत म.प्र.की तकरीबन 500 माध्यमिक शालाओं लागू विज्ञान की पुस्तकें, तीन किताबों का सेट, मूल्य 41.25 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त

खुशी-खुशी कक्षा 1 से 5 तक - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिए तैयार पुस्तकें, नौ किताबों का सेट 150 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त
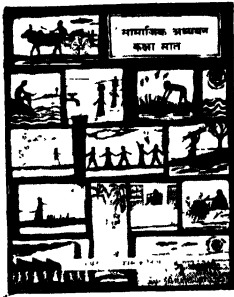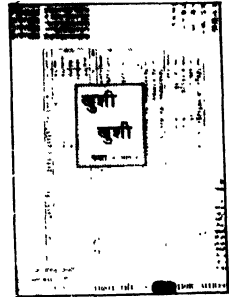
सामाजिक अध्ययन कक्षा 6, 7 और 8 एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में विकसित की गई पुस्तकें, तीन किताबों का सेट, मूल्य - 90 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त
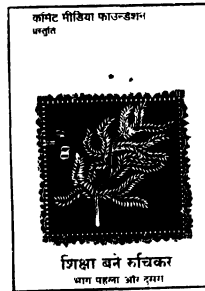
शिक्षा बने रुचिकर बंबई के कॉमेट मीडिया फाउंडेशन द्वारा तैयार की गई वीडियो फिल्म, जिसमें एकलव्य की तमाम शैक्षिक गतिविधियों को समेटा गया है। हिंदी और अंग्रेज़ी में उपलब्ध।
समय - 60 मिनट, मूल्य 350 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त

इनके अलावा भी ....

जनविज्ञान का सवाल - भोपाल गैस त्रासदी को लेकर तैयार की गई पोस्टर प्रदर्शनी की सचित्र पुस्तिका, मूल्य 3.00 रुपए
माचिस की तीलियों के रोचक खेल (पहेलियां) - मूल्य - 3.00 रुपए
सामाजिक अध्ययन शिक्षण : एक प्रयोग - सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम के बारे में जानकारी देनी पुस्तिका, मूल्य 5.00 रुपए
विज्ञान क्या है - (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य 2.50 रुपए
इतिहास क्या है - (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य 2.50 रु.
हमारी सेहत हमारी लड़ाई - गैस पीड़ितों के लिए एक स्वास्थ्य पुस्तिका, मूल्य 5.00 रुपए
बोलो क्या तुम चुप बैठोगे - नर्मदा पर एक लंबी कविता, मूल्य 2.00 रुपए
जवाब-दर-सवाल - जनगीतों का संकलन, मूल्य 5.00 रुपए
प्राशिका रिपोर्ट - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (प्राशिका) में नवाचार को डाक्यूमेंट करती रिपोर्ट (अंग्रेजी में), रत्नासागर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ - 160, मूल्य 75.00 रुपए। (हिंदी सस्करण प्रेस में)
कहानी संग्रह - प्राशिका समूह द्वारा संकलित कथाएं - बच्चों के साथ बोलने, सुनने के लिए, मूल्य 10.00 रुपए
कविता संग्रह - प्राशिका समूह द्वारा संकलित कविताएं - बच्चों के साथ गाने-गुनगुनाने के लिए, मूल्य 10.00 रुपए
लोमड़ी और ज़मीन - चकमक में प्रकाशित बच्चों की रचनाओं का संकलन, मूल्य 12.00 रुपए
प्यारा लड्डू - चकमक में प्रकाशित बच्चों की कविताओं का संकलन, मूल्य 10.00 रुपए
टिकाऊ खुशहाली की ओर - सरदार सरोवर परियोजना का एक विकल्प, मूल्य 30.00 रुपए

एकलव्य के कार्यक्रमों तथा प्रकाशनों के बारे मे अधिक जानका
एकलव्य, ई -1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) - 46
016 से मिल सकेगी। सामग्री के लिए राशि अग्रिम भेजें

एक शिकारी ने बनाया जाल ----

1. कई बार मकड़ी के जाले की शुरूआत हवा में लहराते हुए एक पतले धागे से होती है जिसे, मकड़ी इसी उम्मीद में लटकाती है कि कोई हवा का झोंका उस धागे के सिरे को उड़ा ले जाए और वह स्वतंत्र सिरा कहीं जाकर अटक जाए।
2. जब कभी ऐसे धागे का सिरा कहीं अटक जाता है तो मकड़ी उसे खींचकर कस देती है और उस धागे पर चलते हुए एक खूब मोटा-सा धागा बुनती हुई चली जाती है। इन दोनों पौधों के बीच यह पुलनुमा धागा मोटा इसलिए रखा जाता है क्योंकि आखिरकार बड़े-से जाले का ज़्यादातर वज़न इसी धागे को संभालना है।
3. अब ढांचा खड़ा करने के लिए मकड़ी एक कोने पर तीसरा धागा चिपकाकर मोटे धागे के सहारे वापस लौटती है। ऐसा करते हुए नए धागे को एकदम ढीला रखकर लटका देती है। इस ढीले धागे के निचले सिरे पर आकर मकड़ी उसे एक और धागे के सहारे नीचे की टहनी से खींचकर चिपका देती है। इससे अंग्रेज़ी के 'वाई' आकार का ढांचा बन जाता है, जो एक तरह से आगे बनने वाले जाले की सीमाएं तय कर देता है। इस 'वाई' के बीच का बिन्दु उस ढांचे का केन्द्र बिन्दु बन जाएगा।

4-5. इसी तरह मकड़ी केन्द्र से तीन-चार और धागों के सहारे बाहर का एक घेरा-सा बना लेती है।

6. अब केन्द्र और इस बाहरी घेरे के बीच खूब सारे और धागे चिपका दिए जाते हैं। आमतौर पर गोले की त्रिज्या जैसे चिपके इन धागों की संख्या पचास से ज़्यादा नहीं होती। अब जाला साइकल के स्पोक-युक्त पहिए की तरह दिखने लगता है। उसके बाद मकड़ी एकदम बीच में जाकर तेज़ी से गोल-गोल घूमकर केन्द्र में एक मज़बूत-सा छल्ला बना देती है।
7. बीच से शुरू होकर बाहर की तरफ जाते हुए अब मकड़ी सर्पिलाकार आकृति में धागे जमाना शुरू करती है। ये सर्पिलाकार धागे अस्थाई होते हैं, क्योंकि जाला बनाने के अंतिम चरण में वह खुद इनको खा जाएगी। एकदम बाहरी ढांचे तक पहुंचने से थोड़ा पहले ही वह रुक जाती है।
8. अब तक के सब धागे सूखे ही थे, उनमें चिपचिपापन न था। पर अब पहली बार मकड़ी बाहर से अंदर आते-आते चिपचिपा धागा बिछाने लगती है — और पुराना सर्पिलाकार धागा खाकर खत्म करती जाती है। इस तरह चिपचिपे धागों का एक घना जाल बिछाती हुई केन्द्र से थोड़ा पहले ही रुक जाती है।

और इस तरह तैयार हो जाता है उसका शिकारी जाल।

1
2
3
4
5
6
7
h)
8